षष्ठ अध्याय

समकालीन दलित कविता शिल्प एवं नवीन भाषाभिव्यंजना

◈ प्रास्ताविक

दलित साहित्य रमणीय कल्पनाओं का ललित वर्णन नहीं है , एक आंदोलन है, एक क्रांति है, एक आवाज़ है , एक आग़ाज है , तलाश है अपने वजूद की । अतः यह सौंदर्य प्रेमियों के लिए कतई नहीं है । दलित साहित्य का उददेश्य मानवोचित अधिकारों की प्राप्ति और विद्रोह की गलियों से गुजरकर उन सभी बंधनों एवं मान्यताओं के साथ जड़ परंपराओं का खंडन करना है, जो मानव और मानवता के मुक्तिपथ की बाधाएँ है । परिणामतः दलित साहित्य की भाषा में रमणीय शब्दावली एवं काल्पनिक विहारों का अभाव पाया जाता है । इसलिए दलित साहित्य पर प्रायः आरोप लगाये जाते हैं की उनका साहित्य केवल आक्रोश, विद्रोह और संताप का साहित्य है, उनमें अभिव्यक्ति की गहराई का अभाव होता है । काव्यशास्त्रीय एवं सौंदर्यशास्त्रीय मानदण्डों पर यह साहित्य इतना खरा नहीं उतरता है । उसमें अभिव्यक्ति की अपरिपक्वता लक्षित होती है । लेकिन इन आरोपों में कोई तथ्य नहीं है । दलित रचनाओ में भी हमें अलंकार बिम्ब , प्रतीक आदि विपुल प्रमाण में मिलते हैं । बल्कि दलित साहित्य के द्वारा एक नया विश्व, एक नया गवाक्ष हमारे सामने खुलता है । फलतः परंपरित कविता की अभिव्यंजना से एक नए प्रकार की अभिव्यंजना हमें यहाँ उपलब्ध होती है । प्रस्तुत अध्याय में हम आलोच्य कवियों की कविता के साक्ष्य पर उपर्युक्त मुद्दों की तलाश करेंगे ।

साहित्य की भाषा को दो संदर्भो में देखा जा सकता है-एक दिल को छू लेनेवाली भाषा एवं दो दिल को दहलाने वाली भाषा। दिल को छू लेनेवाली भाषा रमणीय, मनोहर एवं मनमोहक शब्दावली से निर्मित होती है, जबकि दिल को

दहलानेवाली भाषा यथार्थ बोध से युक्त होती है । दिल को छू लेनेवाली भाषा पाठक को कल्पना के गगन में विहार करवाकर रमणीय आनंद की अनुभूति करवाती है , जबकि मारक भाषा सहृदय पाठक के दिल में अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ़ क्रांति-भावना को जन्म देती है , जिससे नए समाज का निर्माण करने की ललक एवं झूठी एवं अन्यायी परंपराओं के मकड़-जाल से मुक्ति की छटपटाहट तीव्र बनती है । साहित्य के उदेश्यों को ध्यान में रखकर यदि इन दोनों प्रकार की भाषाओं के बारे में तटस्थता पूर्वक विचारणा की जाए तो, मोहक भाषा की तुलना में मारक भाषा अपने साहित्यिक उद्देश्यों के लिए अधिक उचित एवं प्रभावशाली जान पडती है । दलित साहित्य की भाषा निश्चित रूप से मारक भाषा है जो उसके सामाजिक एवं मानवीय उद्देश्यों की परिपूर्ति के लिए अनिवार्य है ।

दलित साहित्य की भाषा के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु हम यहाँ दलित साहित्य के शिल्पविधान की विस्तृत चर्चा करेंगे। 'शिल्पविधि' की परिभाषा देते हुए डॉ. गिरीशकुमार ने कहा है कि -" रचनाकार अपने अमूर्तभावों, जीवनानुभवों, स्वानुभूति से उत्पन्न हुए विचारों को जिस पद्धति से मूर्त रूप प्रदान करता है उसे 'शिल्पविधि' कहते हैं । [1] अतः हम कह सकते हैं कि शिल्पविधि में रचनाकार के अनुभवों एवं विचारों तथा भावों की प्रधानता होती है, न कि उसकी अभिव्यक्ति का ढंग । इस दृष्टि से किसी भी सोद्देश्य लेखन की प्रभावकता एवं उसका सौंदर्य स्वयं प्रमाणित होता है , काव्यशास्त्रीय मापदंडों पर निर्भर नहीं है । दलित लेखन एवं उसकी सोद्देश्यता के विषय में डॉ. शरण कुमार लिंबाले के विचार हैं कि - " दलित लेखक लिखते समय अपने अनुभवों को आधार बनाता है । उसके लेखन में एक अवधारणा हमेशा मुखर होती है कि " इसके विरूद्ध विद्रोह करना है , ये नकारना है , ये निर्माण करना है " चूँकि पूर्वनिश्चित अवधारणा से प्रेरित होकर दलित लेखक लिखता है , इसलिए उसका लेखन सोद्देश्य होता है । " [2] अतः हम कह सकते हैं कि दलित लेखन का सौंदर्य स्व-प्रमाणित होता है ।

हमारा संदर्भ दलित काव्य साहित्य से है , इसलिए हम यहाँ दलित कविता के शिल्पविधान की परिचर्चा करेंगे । दलित काव्य साहित्य के शिल्पविधान को हम निम्नलिखित संदर्भो में देख सकते हैं -

1. भाषा
2. भाषिक तत्व एवं
3. वैचारिक एवं सामाजिक प्रतिबद्धता

दलित साहित्य की शिल्पविधि का हम उपरोक्त तत्वों के संदर्भ में आकलन करेंगे ।

6.1 दलित साहित्य का भाषा वैशिष्ट्य

भाषा वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम मात्र है , अतः केवल उस माध्यम के आधार पर किसी भी साहित्य की उत्कृष्टता या निकृष्ठता का एलान करना किसी भी दृष्टि से उचित एवं तार्किक सिध्ध नहीं होता । दलित साहित्य एवं साहित्यकारों की नयी एवं अलग दुनिया है , अलग अनुभव है , अलग संवेदनाएँ हैं जिन्हें वे अपनी रचनाओं में पिरोते हैं । दलितजन शिक्षा , सम्मान एवं सहयोग के चीर आकांक्षी रहे हैं , अतः उनकी रचनाएँ उनकी इसी तलाश का माध्यम है । यदि इस तलाश के रास्ते में कोई बाधाएँ या विपत्तियाँ आती हैं , तो वह उससे संघर्ष करती नज़र आती है । इस संघर्ष में पुरानी जड़वादी परंपराओं के ‘हवाई किले’ डगमगाने लगते हैं , अनेकानेक शोषणमूलक ‘सुविधाओं’ की जड़ें हिलने लगती हैं और यही बात उत्पीड़न-प्रेमियों की आँखों में खटकने लगती है । ये लकीर के फ़क़ीर नव निर्माण एवं नये सृजन की रचनात्मकता से कतराते हैं और डरते हैं , और परिणाम स्वरूप वह ऐसे साहित्य एवं भाषा को नकारने लगते हैं , जो नवनिर्माण की अभिलाषी हो । वे ऐसी साहित्यभाषा को अनेक प्रश्नों एवं विवादों के कटघरे में खड़ा कर देते हैं और येन केन प्रकारेण उसे नीची या निकृष्ठ सिध्ध करने पर तुल जाते हैं । यही वजह है की दलित साहित्य एवं उसकी भाषा को भी नकारा जा रहा है । दुःखद बात तो यह है की बाकी सब क्षेत्रों में रचनात्मकता और नवीनता का आग्रह रखनेवाला यह

'बुद्धिजीवी' समाज साहित्य के क्षेत्र में भाषा की नवीनता एवं उसकी प्रभावोत्पादकता से क्यूँ कतराता है ? क्यूँ वह हर एक रचना , हर एक साहित्य को पुराने मानदण्डों के आधार पर देखता है ? और जो इन शास्त्रीय मानदण्डों के साथ संघर्ष करके नये , यथार्थ एवं प्रासंगिक मानदण्ड की स्थापना करना चाहता है उसे 'गटर साहित्य' कहकर ठुकरा देता है ? क्यों वह साहित्यिक सौंदर्य के नए प्रतिमानों को प्रस्थापित करने से कतराता है ?

यह तो सर्व विदित तथ्य है कि दलित समाज युगों-युगों से प्रताड़ित एवं अपमानित होता आया है , उसके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया गया है । वह हर उस चीज के लिए तड़पा है जो अन्य मानवों को सहजलभ्य थी । अतः ऐसा रचनाकार जिसने अपने जीवन में कभी भी सुखशांति एवं सदभावना का अनुभव न किया हो , वह अपनी रचनाओं में काव्यशास्त्रीय सौंदर्य मूलक तत्वों का समावेश कैसे करे और क्यूँ करे ? क्या विश्व में सौंदर्य ही एक मात्र तराजू है साहित्यिकता को तोलने का ? " क्या मनुष्य केवल सौंदर्य का ही दीवाना है ? क्या मनुष्य को केवल आनंद ही चाहिए ? इसका उत्तर नकारात्मक है , क्योंकि हजारों-लाखों मनुष्य स्वतंत्रता , प्रेम , न्याय , समता के लिए दीवाने हुए दिखाई पड़ते हैं । इसके लिए उन्होंने आत्म बलिदान भी किया है । इसका अर्थ यह है कि मनुष्य केवल आनंद और सौंदर्य के लिए दीवाना नहीं होता , वो समता , स्वतंत्रता , न्याय और प्रेम के लिए दीवाना होता है । आनंद अथवा सौंदर्य के लिए दुनिया में कभी भी क्रांति नहीं हुई । समता , स्वतंत्रता एवं न्याय के लिए अनेक सत्ता-पलट हुए हैं , यही इतिहास है । अर्थात् मनुष्य को कलामूल्य के समान ही, बल्कि उससे अधिक सामाजिक मूल्य भी प्राण-प्रिय नज़र आता है । समता , स्वतंत्रता न्याय और प्रेम ये व्यक्ति और समाज की मूलभूत भावनाएँ हैं । वे आनंद और सौंदर्य से कई गुना अधिक महत्वपूर्ण है । " [3] और यही मानवीय एवं सामाजिक मूल्य दलित साहित्य के प्राण-तत्व हैं । दलित साहित्य का उद्देश्य समाज का 'रंजन' नहीं , अपितु 'मंजन' है । अतः उसके आकार से ज्यादा उसके ' आशय' को महत्व देना चाहिए । दलित साहित्य का

आशय जीवन से संबध रखता है , संघर्ष से संबंध रखता है । दलित अपने जीवन में हर उस संघर्ष को भोगता है , जो उसमें क्रोध , क्षोम एवं जोश भरता है । उसे अपने अस्तित्त्व की तलाश है , और इस तलाश को वह अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है , इसीलिए दलित साहित्य में रमणीय शब्दावली का अभाव पाया जाता है और ऐसी अपेक्षा रखना भी मूर्खता ही कहलाएगी । ललित साहित्य और दलित साहित्य में आसमान जमीन का अंतर है , क्योंकि लालित्य एवं दालित्य की तुलना नहीं की जा सकती । दलित साहित्य का यथार्थ बोध एवं परिवर्तन की छटपटाहट ही उसका शिल्प-सौंदर्य हैं ।

दलित साहित्य के शिल्पविधान के संदर्भ में डॉ. एन.सिंह का मानना है कि- " दलित साहित्य का शब्द-सौंदर्य प्रहार में है , सम्मोहन में नहीं । वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी-गली परंपराओं पर बेदर्दी से चोट करता है । वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीनेवाले दलित को लड़ना सिखाता है , वह सिर पर पत्थर ढ़ोनेवाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है । उसे धर्म की भूल-भुलैया से निकालकर शोषण से मुकित का मार्ग दिखाता है । उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है , वह उसमें है , और यही दलित साहित्य का शिल्प-सौंदर्य है ।"[4] दलित साहित्य के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि 'तलवार' का मूल्य होता है , 'म्यान' का नहीं अतः हमें दलित साहित्य के महान उद्देश्यों एवं आशय को महत्त्व देना चाहिए शाब्दिक सजावट को नहीं , क्योंकि यह साहित्य उत्पीड़न से जन्मा है और उत्पीड़न का आनंदमयी-ललित वर्णन संभव नहीं होता ।

मनु निर्मित वर्णवाद एवं उसके आधार पर पैदा हुई शोषण मूलक व्यवस्था पर क़रारी चोट करके केवल मानवता एवं समानता के शासन की स्थापना करने का सपना लिए दलित साहित्य अग्रसर हो रहा है । इसकी भाषा विद्रोही एवं कटु है , क्योंकि यथार्थ बोध में माधुर्य का अस्तित्व ही नहीं है , सच हंमेशा कड़वा होता है , लेकिन याद रहे 'सत्य' होता है । यह सत्य जड़वादी मानसिकता पर प्रहार

करनेवाला होता है । अतः दलित साहित्य में सत्यम् -शिवम्- सुन्दरम् की कल्पना व्यर्थ है । इसके उत्तर में डॉ. शरण कुमार लिंबाले का कहना है कि- " ब्राह्मण की ब्रह्मा के मुख से और शूद्र की ब्रह्मा के पैरों से उत्पत्ति हुई है , क्या यह सत्य है ? गत जन्म में पाप किया इसलिए इस जन्म में शूद्र का जन्म मिला, क्या यह सत्य है ? यदि यह सत्य होगा तो ही वह शिव होगा , अन्यथा अशिव है । हिन्दू धर्म शास्त्रों ने दलित मनुष्यों के स्पर्श , छाया और वाणी को अस्पृश्य माना है । वे पशुवत् जीवन जी रहे हैं , ये कैसा शिव ? शूद्र त्रिवर्णों की सेवा करें , उसे सत्ता , संपत्ति , प्रतिष्ठा और ज्ञान का अधिकार नहीं ! ये कैसा शिव ? "

दलित गाँव के बाहर रहे , उनके नाम अमंगल हों , वे गधे-कुत्ते पालें या कफ़न का वस्त्र ही पहनें । ये कैसी सुंदरता, ये सौंदर्य का कैसा, कौन-सा स्वरूप है ? उन्होंने डंके की चोट पर कहा है कि -

- मनुष्य सर्वप्रथम मनुष्य है यही सत्य है ।
- मनुष्य की स्वतंत्रता ही शिव है ।
- मनुष्य की मनुष्यता ही सौंदर्य है । [5]

सत्य कभी सुन्दर नहीं हो सकता एवं सौंदर्य कभी अलौकिक नहीं हो सकता । रमणीय कल्पना विहार के द्वारा सौंदर्यपान करवाना साहित्य का मकसद होना किसी भी स्वरूप में स्वीकार्य नहीं हो सकता ।

दलित साहित्य के शिल्पविधान को लेकर अनेक विवाद सामने आते हैं एवं उस पर अनेक आरोप लगाये जाते हैं , यहाँ हम कुछ प्रमुख आरोपों एवं विवादों का तथ्यात्मक अध्ययन करने का प्रयास करेंगे ।

6.2 दलित साहित्य के रचनाकार संबंधी विवाद

साहित्य जगत में आज भी यह प्रश्न बार-बार उठ रहा है कि- दलित साहित्य की रचना केवल दलित रचनाकारों को ही करनी चाहिए कि अदलित लेखक भी दलित साहित्य की रचना कर सकते हैं ?

उपरोक्त विवाद स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का कहा जा सकता है । कुछ आलोचकों का कहना है कि घोड़े के बारे में लिखने के लिए घोड़ा बनना ज़रूरी नहीं , लेकिन यह भी उतना सत्य है की आप घोड़े के नक़्शे, उसकी क्रिया-प्रक्रिया का वर्णन कर तो लोगे लेकिन वह घोड़ा अपने मन में क्या भावनाएँ रखता है ? उसने अपने जीवन में कौन सी अनुभूतियों को किस दृष्टि से लिया है ? अपने मालिक के बारे में वह क्या सोचता है ? इन सब का यथार्थ वर्णन घोड़े के सामने बैठकर असंभव है । प्रसव पीड़ा का वर्णन प्रसूता को छोड़कर और कोई नहीं कर सकता । दलित लेखक आपबीती लिखता है जबकि अदलित लेखक आँखों देखी या कानों सुनी लिखता है । इन सबसे ऊपर उठकर यदि सोचा जाए तो दलित साहित्य के रचनाकार संबधी विवाद ही व्यर्थ है क्योंकि, रचनाकार चाहे कोई भी हो , अगर वह दलित लोग - दलित जाति की पीड़ा एवं समस्याओं को ईमानदारी से चित्रित करता है तो वह दलित साहित्यकार है और उसका लेखन दलित साहित्य कहलाएगा । याद रहे कि यहाँ 'दलित साहित्यकार' शब्द में 'दलित' जाति से संबंधित नहीं है उसकी रचना से संबंधित है । इस संबंध में डॉ॰ सूर्यनारायण रणसूभे का मानना है कि - " दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही दलित साहित्य कहा जाए इस परिभाषा की अपेक्षा हमारा विश्वास इस परिभाषा में है की जिस साहित्य में दलित - जीवन की संवेदना को प्रखरता से पकड़ा जाता है वह दलित साहित्य है , फिर वह किसी भी वर्ण या जाति के व्यक्ति द्वारा क्यों न लिखा गया हो । " [6]

सारांशत: दलित चेतना से युक्त साहित्य दलित-साहित्य है । मेरा मानना है की साहित्य के विषय में उसकी चेतना उसकी संवेदना , उसकी उपादेयता ही प्रमुख होती है , ना कि उसके रचनाकार । अतः दलित साहित्य का सीधा संबंध उसका वर्ण्य विषय एवं रचनाकार की तटस्थता से है नाकि रचनाकार की जाति से । साहित्य के विषय में रचनाकार संबंधी विवाद को स्थान देना मूर्खता का ही प्रमाण होगा ।

अतः रचयिता संबंधी विवाद को निरस्त्र करते हुए हम यही कह सकते हैं कि - जो शोषित पीड़ित,अछूत-उपेक्षित व्यक्ति के जीवन के दुःख-दर्द , वेदना- अभाव, समस्या, जीवन - दर्शन, आतंरिक-बाह्य अंतर्विरोध वगैरह को व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति दे उसे 'दलित साहित्य' माना जाना चाहिए ।

6.3 सपाट-बयानी या गद्यात्मकता का आरोप

साहित्य जगत के कुछ आलोचक दलित काव्य साहित्य की भाषा पर सपाट-बयानी का आरोप लगाते हैं । उनका मानना है कि दलित कविता की भाषा में अभिव्यक्ति की गहराई और लयात्मकता का अभाव है । दलित कविता की भाषा गद्यात्मक है ।

दलित काव्य साहित्य की भाषा पर लगाए गए इस आरोप के संबंध में यदि सोचा जाए तो सर्व-प्रथम हमें दलित साहित्य की पृष्ठभूमि एवं उसके परिवेश के विषय में सोचना चाहिए । दलित साहित्य दलितों का , दलितों के लिए लिखा गया साहित्य है । दलित वर्ग प्राचीनकाल से ही अज्ञान एवं अशिक्षा के भयावह अंधकार में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है । आज भी वह कुछ हद तक असाक्षर या अल्पसाक्षर है । अतः यह साहित्य का एक बहुत बड़ा पाठक वर्ग अशिक्षित या अल्पशिक्षित है , जो क्लिष्ट शब्दों के मायाजाल को समझने में असमर्थ है । दूसरी तरफ़ इस साहित्यकार के रचनाकार भी अल्पशिक्षित हो सकते हैं । उन्होंने जो भोगा वही लिखा और अपने बंधुओं में चेतना जागृत करने के लिए लिखा । यदि दलित साहित्य के विषय में इन तथ्यों को ध्यान में रखकर सोचा जाए तो दलित कविता की भाषा में सपाट बयानी नज़र नही आएगी ।

दलित साहित्य ने कभी भी 'साधना' को महत्व नहीं दिया 'साध्य' को ही निशाने पर रखा है । दलित रचनाकारों के लिए अपने उद्देश्य ही सर्वोपरि रहे हैं , भाषा नहीं । दलितवर्ग जो कम-पढ़ा लिखा है उसे जागृत करने के लिए उनकी आम बोल-चाल की भाषा को अपनाना अनिवार्य ही था ।

दूसरी बात यदि साहित्य सर्जन में यथार्थ बोध को सर्वोपरि माना जाता है , तो दलितों की तो यह पारिवेशिक भाषा है । उनके परिवेश में साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं होता है , अतः उनकी पारिवेशिक घटनाओं का बयान भी उसी भाषा में किया गया , जो यथार्थ परक है । " दलित जीवन की विसंगतियाँ , उत्पीड़न , शोषण और दमन की अभिव्यक्ति के लिए ऐसी ही सरल , सहज और सटिक भाषा अधिक उपयुक्त है क्योंकि, इसके पाठक कम पढ़े-लिखे दलित वर्ग के लोग हैं । इसलिए दलित कविता की भाषा भी अधिकतर गद्यात्मक है ।" [7] दलित कविता की आम बोल-चाल युक्त भाषिक अभिव्यंजना सामाजिक संदर्भों से आसानी से जुड़ जाती है और वह अपनी अभिव्यक्ति में एक आंदोलन-क्रांति का आहवान करती है । जैसे 'चुनौती' शीर्षक दलित कविता में डॉ. सी.बी.भारती का आग़ाज है -

" हमारी भागीदारी के लिए / योग्यता की शर्त / कब तक फेंकोगे तुम
अपना मकड़जाल हम पर ? / घबड़ाओ नहीं / समय आ रहा है
जब हम भी बढ़ेंगे तुमसे / दौड़ने की शर्त / जीतेंगे बाजी /
तोड़ेंगे तुम्हारा दर्प / सुनो ! परिवर्तन की सुगबुगाहट
हवा का रुख / पहचानो ! पहचानो !! पहचानो !!! " [8]

अगर देखा जाए तो पहले खड़ी बोली कविता के लिए वर्ज्य थी पर अब अधिकतर कविताएँ खड़ी बोली में ही लिखी जा रही है । अगर अन्य साहित्यकार खड़ी बोली या आम-बोलचाल की भाषा में काव्य-रचना कर रहें हैं तो दलित कविता की गद्यात्मक भाषा से परहेज़ क्यों है ? नव साक्षर दलित रचनाकारों से साहित्यिक कलिष्ट भाषा की अपेक्षा क्यूँ रखी जाती है ?

6.4 वर्ण्य-सामग्री के पुनरावर्तन का आरोप

दलित साहित्य पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि इस साहित्य में वर्ण्य विषय की विविधता का अभाव है , बस वो ही रोना-धोना , संताप एवं समस्याओं से उत्पन्न नकारों का पुनरावर्तन मिलता है ।

इस आरोप के प्रत्युत्तर में हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य दलितों का साहित्य है, इसके रचनाकार उस दलित जातियों के प्रतिनिधि हैं जिन्होंने अपने अभाव पूर्ण जीवन के कटु यथार्थ को भोगा है । ध्यातव्य है कि दलितों को युगों-युगों से वेदनामय एवं सपनीले कहकहों की धरोहर प्राप्त हुई है । उन्होंने अपमान , तिरस्कार एवं शोषण का नंगा नाच न सिर्फ देखा है , बल्कि झेला है और वही सड़ी-गली मान्यताओं एवं परंपराओं के मकड़जाल की घुटन को सहा है । सभी दलित रचनाकारों का सामाजिक एवं वैचारिक परिवेश एक समान है , उसके दुःख-दर्द , उसकी पीडाएँ , उसकी संवेदनाएँ , उसके संघर्ष , उसकी खीज , उसका विद्रोह, उसका प्रतिकार एवं सबसे महत्वपूर्ण उसके साहित्यिक उद्देश्य एक समान है । सभी दलितों ने समान यातनाओं को झेला है । समान अभावों एवं अनुभवों के भुक्तभोगी रहे हैं ये दलित रचनाकार , इसलिए उनके लेखन में उनके अनुभव एवं संवेदनाओं के चित्रण में कभी-कभी समानता नज़र आती है । याद रखना चाहिए कि दलित साहित्य का उद्देश्य लोक रंजन नहीं है । दलित लेखक अपनी आपबीती लिखता है और इसी के वर्णन के द्वारा वह अपने बंधुओं में मुक्ति की छटपटाहट पैदा करना चाहता है ।

दलित साहित्य यथार्थ के कठोर धरातल पर निर्मित होता है । दलित अपने अनुभवों को लोकभोग्य बनाने की चेष्टा करता है और ये अनुभव उसकी जिंदगी की कटु वास्तविकताएँ है । विषय विविधता के द्वारा अपने साहित्यिक ज्ञान का प्रदर्शन उसका मकसद नहीं है । दलित लेखन की वैचारिक भूमिका समान है । " समान वैचारिक भूमिका के कारण इस साहित्य का स्वरूप एकसूरी है । इसके अतिरिक्त दलित साहित्य में प्रस्तुत अनुभव वही के वही हैं । अस्पृश्यता के कारण होनेवाले अनुभव एक जैसे हैं । गाँव का नाम भले ही अलग हो , पर दलितों पर जुल्म का स्वरूप समान है । सामाजिक बहिष्कार , अलग पनघट, अलग स्मशान , अलग बस्ती, किराए पर घर न मिलना , जाति छिपाना , सार्वजनिक स्थान में प्रवेश के

लिए मनाही , दलित स्त्रियों पर होने वाले अन्याय , मृत जानवर को खींचना , फाड़ना , नाई द्वारा बाल न काटना आदि अनुभव एक सरीखे हैं । अत: दलित लेखकों में विचार साम्य , अनुभव साम्य और भावना में साम्य होने के कारण दलित साहित्य में एकसूरता दिखाई देती है । ” ९

यदि गौर दिया जाए तो हम पाते हैं कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के दलितेतर साहित्य में भी वर्ण्य सामग्री का पुनरावर्तन दिखाई देता है । पहले से लेकर आज तक के साहित्य में वही आध्यात्म, वही मोक्ष , पाप, मोह , लालसा , वही प्यार , वही प्रेयसी , वही प्रेमी , वही प्रेम , वही प्रकृति , वही प्रणय , वही प्रतीक्षा , प्रमाद आदि का ही तो वर्णन है । क्या ये पुनरावृत्ति नहीं है ? इस साहित्य पर एकसुरिता का आरोप क्यों नहीं लगता ? जो साहित्य अभी विकसित हो रहा है , जिसके रचयिता नवसाक्षर हैं , ऐसे प्रगतिशील साहित्य को इस प्रकार के अतार्किक विवादों के कटघरे में खड़ा कर देना साहित्यिक दृष्टि से भी उचित और न्यायपूर्ण नहीं जान पड़ता है । क्या इन विवादों में दलित साहित्य की उर्ध्वगति को बाधित करने के षड़यंत्र की बू नहीं आती ?

6.5 गटर साहित्य या अश्लीलता का आरोप

दलित साहित्य भाषा पर आरोप लगाया जाता है कि दलित साहित्य की भाषा अश्लील शब्दावली जैसे हगना, मूतना , थूथड़ आदि लिए हुए हैं और उसमें गाली-गलौच का भी प्रयोग हुआ है इसलिए दलित साहित्य की भाषा अश्लील और गंदी है । साहित्य में ऐसी गटरछाप भाषा का प्रयोग नहीं होना चाहिए ।

इस आरोप के प्रतिपक्ष में यह कहना चाहूँगा कि दलित साहित्य ने कभी-भी झूठे अभिजात्य को नहीं अपनाया , उसने हंमेशा आम जन भाषा का ही प्रयोग किया है । वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो दलितों की पीड़ा , अपमान और व्यथा , तथा जन-सामान्य की आशा-आकांक्षाओं के यथार्थ को बखूबी अभिव्यक्त कर सके । गाँव के बाहर अलग-थलग रहकर यातनामय जीवन व्यतित करनेवाले दलितों की

जन-भाषा संस्कृत निष्ठ काव्यात्मक भाषा नहीं होती यह स्वाभाविक ही है । और यदि देखा जाए तो हिन्दू धर्मशास्त्रों ने ही दलितों के लिए शिष्ट और संस्कृत भाषा के प्रयोग करने पर पाबंदी लगा रखी है । दलितों के नाम अमंगल होते हैं , उनके काम अपवित्र होते हैं वे अपवित्र जगहों पर निवास करने के लिए बाध्य हैं और उनको हमेशा अमंगल शब्दों से ही पुकारा या बुलाया जाता है , ऐसी ‘ विशिष्ट व्यवस्था ’ में उन शोषितजनों से शिष्ट भाषा की अपेक्षा रखना ही अल्पमति या कहें कि कुमति का ही परिचायक है । यथार्थ बोध दलित साहित्य की नींव है अतः इस साहित्य के लिए भाषा का आलंकरण वर्ज्य ही होना चाहिए । इस विषय में कँवल भारतीजी का मानना है कि - “ दलित साहित्य गाली साहित्य नहीं है । जिस परिवेश में दलित साँस ले रहा है , वे गालियाँ उस परिवेश में है । दलित लेखक उन गालियों को उस परिवेश से कैसे निकाल सकता है ? यथार्थ का यथार्थपूर्ण चित्रण उसकी समग्रता में ही हो सकता है । ” [10]

दूसरी बात यह है कि दलित साहित्य पर अश्लीलता का आरोप लगानेवालों को यह भी सोचना चाहिए कि सवर्ण वर्ग दलितों को कैसी-कैसी गालियों एवं अपशब्दों से नवाजते हैं , दलितों के प्रति उनकी भाषा कितनी ‘शिष्ट’ और ‘सुसंस्कृत’ होती है । क्या अश्लीलता एवं गन्दी भाषा पर भी केवल सवर्ण वर्ग का ही अधिकार है ? क्या दलितों को गालियाँ बोलने का भी अधिकार नहीं है ?

वैसे अगर देखा जाए तो हिन्दी साहित्य की रीतिकालीन रचनाओं में भी नायिका के अंग-उपांगों का अलंकृत वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है । क्या वह अश्लीलता नहीं है ? रीतिकालीन कवियों की रचनाएँ समागम एवं रतिक्रीड़ाओं के वर्णनों से भरपूर है , यदि वह ‘कला’ है तो उसे दलित साहित्य में अश्लील कहकर क्यूँ नकारा जाता है ? भाषा की शिष्टता एवं सुसंस्कृतता के विषय में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि समागम का कलात्मक एवं रसिक वर्णन किया जा सकता है , बलात्कार का नहीं । दलित साहित्य में दलित महिलाओं पर हुए यौन अत्याचारों का यथार्थ वर्णन है , सवर्ण समाज के व्यभिचारों एवं यौवनाचारों से दलित स्त्रियाँ कितनी

पीड़ित एवं प्रताड़ित हुई है उसका वर्णन है । अतः इस साहित्य की भाषा में सौंदर्य की कल्पना करना पूर्णतया अतार्किक होगा । कँवल भारतीजी ने इस आरोप का मुँहतोड़ जवाब दिया है -

" यह बताओ / बलात्कार की शिकार / तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी ?
कैसे होंगे / गुलामी की जिन्दगी जीनेवाले / तुम्हारे बाप के विचार ?
ठाकुर की हवेली में दम तोड़ती / तुम्हारी बहिन के शब्द ?
क्या वे सुन्दर होंगे ??? " [11]

दलित साहित्य को गटर साहित्य एवं अश्लील साहित्य कहकर नाक-भौंह चढ़ानेवाले तथाकथित 'शिष्ट' आलोचकों को अपने साहित्य की ' नंगी कलात्मकता ' का पुनः मूल्यांकन करना-करवाना चाहिए । "अपनी भाषा पर लगे अश्लीलता संबंधी आरोपों का उत्तर देते हुए डॉ. धर्मवीर , 'हंस' के सम्पादक राजेन्द्र यादव और 'हंस' में छपी लेखक-लेखिकाओं की कहानियों की भाषा का उदाहरण देते हैं तथा धारदार तर्क और प्रमाणों के साथ अपनी बातों को रखते हैं। मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'छुटकारा' , राजेन्द्र यादव के विरुद्ध मन्नू भंडारी की आक्रामक भाषा और 'एष धम्म सनंतनों' जैसी कहानियों के हवाले से डॉ॰ धर्मवीर उन कहानियों में आये अश्लील शब्दों और संदर्भो की एक लम्बी सूची पेश कर देते हैं । " [12]

दलित साहित्य के समकालीन साहित्य की भाषा पर यदि दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि आधुनिक साहित्य मनमें गुदगुदी पैदा करनेवाले अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनों से भरपूर है । साहित्य जगत भी उस उक्ति से निजात नहीं पा सका है कि - 'जो दिखता है , वह बिकता है , इसका साहित्य के संदर्भ में परिमार्जन यह होगा कि - जो साहित्य 'दिखाता' है , वह बिकता है , जो 'सिखाता' है वह नहीं । अन्य साहित्य कलात्मकता के नाम पर अश्लील एवं उत्तेजित करनेवाले जातीय वर्णनों के द्वारा 'सहृदय' पाठक की वासना को जागृत करके उसे बहकाता है और प्रसिद्ध हो जाता है , जबकि इसके विपरीत दलित साहित्य अपनी माँ-बहनों पर हुए अत्याचारों के यथार्थ वर्णन के द्वारा अपने बंधुओं में क्रांति की ललक जगाना चाहता है । वह

व्यक्ति की विषय वासना को नहीं जगाता लेकिन उसके अंदर के इन्सान को जगाता है और अत्याचार के सामने विद्रोह के लिए उकसाता है । दलितेतर साहित्य पाठकों के गंदे मनोरंजन हेतु अपनी कलम के द्वारा अंग उपांगों एवं समागम को 'दिखाता' है, इसलिए बिकता है, जब कि दलित साहित्य बलात्कार के वर्णन के द्वारा इसके खिलाफ़ विद्रोह करना 'सिखाता' है, इसलिए इतना प्रसिद्ध नहीं हो पाता । इस प्रकार यदि दोनों प्रकार के साहित्य की अश्लीलता के उद्देश्यों को केन्द्र में रखकर विचार किया जाए तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि दलित साहित्य की अश्लीलता मानवों को अन्याय से संघर्ष करके समानता की स्थापना करने के प्रयास रूप है , जिससे समाज का उत्थान हो , जबकि दलितेतर साहित्य का गंदापन इन्सान को नैतिक रूप से गिराने का, जिससे समाज का पतन हो, का कारण माना जाना चाहिए ।

दलित साहित्य की साहित्यिकता को ख़ारिज करने के लिए तथाकथित 'विदवान' आलोचकों ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया है । इस उभरते साहित्य को अनेक प्रश्नों , विवादों और आरोपों से घेरने का प्राणांतक प्रयास किया है और कर रहे हैं । दलित साहित्य का नामकरण उसके रचनाकार , उसकी भाषा , उसके विषय , उसकी उपादेयता , उसकी उपलब्धता आदि अनेकानेक बातों को लेकर उन पर प्रश्नचिन्ह लगाने की कोशिशें हो रही हैं । लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि दलित साहित्य इन सब आरोपों एवं विवादों से संघर्ष करके और शसक्त एवं और सफल बनकर उभरा है ।

दलित साहित्य के शिल्प विधान पर लगे समस्त आरोपों एवं विवादों को निरस्त्र करने हेतु हम यहाँ दलित काव्य साहित्य के भाषिक तत्वों का आकलन करेंगे और इसके द्वारा यह सिध्ध करने का विनम्र प्रयास करेंगे कि दलित साहित्य भी किसी भी दृष्टि से मामूली या घटिया नहीं है और इसके द्वारा साहित्य जगत में दलित साहित्य के विषय में फैली भ्रमणाओं को नेस्तोनाबुद करने का प्रयास करेंगे ।

6.6 दलित कविता के भाषिक तत्व

दलित काव्य साहित्य के भाषिक तत्वों के अध्ययन के दौरान हम निम्नलिखित भाषिक तत्वों का वैज्ञानिक आकलन करेंगे ।

१. प्रतीक

२. बिम्ब

३. मिथक

४. अलंकार

५. शब्द शक्ति

6.6.1 प्रतीकों से प्रतिकार

लेखन में प्रतीकों का प्रयोग भाषा को सबलता प्रदान करता है , उसे प्रभावी बनाता है । अपने अमूर्त भावों और संवेदनाओं को रचयिता प्रतीकों के सहारे पाठक के मानसपट पर अंकित करता है और यह अंकन उस साहित्य की लोक भोग्यता में वृध्धि करता है । रचनाकार अपनी रचनाओं में कुछ शब्दों , वाक्यों या संकेत मात्र से भी प्रतीकात्मकता पिरो देता है । वह इस माध्यम से गागर में सागर भरने का प्रयास करता है । इस संबध में प्रखर दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकिजी का मानना है कि- “साहित्य में प्रतीक की महत्ता सर्व विदित है । प्रतीक द्वारा भावना , विचार बोध आदि की अभिव्यक्ति जहाँ रचना को प्रभावशाली बनाती है , वहीं अर्थपूर्ण भी । प्रतीक द्वारा किसी भी बात को संक्षेप में कहा जा सकता है । ” [13]

दलित साहित्य में प्रतीकों का सटीक प्रयोग मिलता है । हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य ने अपनी प्रतीकात्मकता से अपनी भाषा और विषय के संबंध में लगे आरोपों का प्रतिकार किया है । दलित रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में नये एवं विशिष्ट प्रतीकों का संकेतात्मक प्रयोग किया है और अपनी भाषा को और प्रभावी एवं घातक बनाया है । पेड़ , अँधेरा , झाड़ू , टोकरी , मदान्ध हाथी, वर्णवाद का पहाड़ा आदि अनेक प्रतीकों ने दलित साहित्य को सशक्त बनाया है ।

" दलित लेखकों ने अपने साहित्य में अनेक प्रतिमान एवं प्रतीकों का प्रयोग किया है। अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए प्रतिमान और प्रतीक अधिक उपयुक्त ठहरते हैं। विशेषकर दलित कविता में प्रतिमान और प्रतीकों का एक विशिष्ट रूप देखने को मिलता है। " [14]

दलित रचनाकारों ने अपनी व्यथा-कथा कहने के लिए प्रचलित प्रतीकों के अलावा अपने नए प्रतीकों का भी निर्माण किया है। दलित साहित्य की भाषा की प्रतीकात्मकता नवीन है। आम जनजीवन की भाषा से ऐसे प्रतीकों एवं बिम्बों को लेकर दलित रचनाकार अपनी बात को वेधक बनाता है। हम यहाँ दलित कविता में विद्यमान विविध प्रतीकों एवं उसकी प्रतीकात्मकता तथा प्रतिकार का तथ्यात्मक अध्ययन करने का प्रयास करेगें।

दलित काव्य साहित्य में दलित समाज की पीड़ा , बेबसी , उत्पीड़न और शोषण-दमन को चित्रित करने के लिए प्रचलित प्रतीकों को नवीन संदर्भो में प्रयुक्त किया है। जैसे किसी उद्यान के माहौल का अभिजात्य साहित्य मनोहर वर्णन करता है। वहाँ पसरी धूप में सोने की कल्पना करता है एवं प्रकृति का मनोहर एवं मनभावन वर्णन करता है। सुनहरी धूप को आनंद एवं संपत्ति का प्रतीक बनाया जाता है , जबकि इसके बिलकुल विपरीत मलखान सिंह लिखते हैं कि -

" यहाँ की कीच भरी गलियों में पसरी / पीली अलसाई धूप देख
मुझे हर बार लगा है कि / सूरज बीमार है या-
यहाँ का प्रत्येक बाशिन्दा पीलिया से ग्रस्त है / इसलिए उनके जवान चहरों
पर / मौत से पहले का पीलापन / और आँखों में / ऊसर धरती का बौनापन
हर पल पसरा रहता है। " [15]

कहना न होगा कि यहाँ सूरज की बीमारी व्यवस्था और उन तमाम संचालक तत्वों के प्रति अनास्था का प्रतीक है , जो मानव को मानव नहीं मानती। ठीक उसी प्रकार जवान चहेरों का पीलापन मजबूरी, अशिक्षा एवं अज्ञान का द्योतक है।

दलितों की आँखों में ऊसर धरती का बौनापन दलितों में संघर्ष-चेतना के अभाव को भी सूचित करता है ।

उसी प्रकार पेड़ भी सवर्णों के साहित्य में जीवनदाता के रूप में चित्रित होता रहा है । बच्चों को भी यहाँ सिखाया जाता है कि पेड़ हमारे सच्चे साथी है । लेकिन उसी पेड़ का प्रयोग दलित कवि लालचन्द राही ने इस प्रकार किया है-

" अब वृक्ष की कटी-छँटी टहनियाँ / पुनः प्रस्फुटित होने लगी हैं
द्रुत गति से / बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में । " [16]

यहाँ पर वृक्ष की कटी-छँटी टहनियाँ दलितों की क्षत-विक्षत स्थितियाँ हैं । यह टहनियाँ दलित-दमन के दस्तावेज हैं । इन डालियों का पुनः प्रस्फुटन दलित चेतना के विस्फ़ोट का आहवान हैं । दलित साहित्य सामन्ती व्यवस्था , शोषक समाज एवं धर्मांध भेड़ियों का विरोध करता आया है, जिन्होंने उनको अमानवीय यातनाएँ एवं विडंबनाएँ सहने के लिए मजबूर किया है । कवि कर्मशील भारती ने इस शोषक एवं अमानवीय समाज के लिए बहुत ही सटीक प्रतीक का निर्माण किया है । खूंखार घडियाल के प्रतीक के द्वारा उन्होंने समूचे शोषक समाज की ऐतिहासिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रकृति को बेनकाब किया है ।

" समूचा शिकार / निगलने के बाद / खूंखार और मक्कार घड़ियाल
जल से निकलकर / किनारे पर बैठा है आहार का रसास्वादन
बडे मज़े से / बडे आराम से लेता है । " [17]

त्रिवर्ण समाज की सेवा-सुश्रूषा में दलित अपना समूचा जीवन समर्पित कर देता है । वह सवर्णों के हित अपना सर्वस्व लूटा देता है । प्राणांतक परिश्रम करके वह समाज की संपत्ति में वृद्धि करता है लेकिन ख़ुद इस संपत्ति , सुख सुविधाओं के अभावों में जीता है । दूसरों के लिए सुविधाओं का निर्माण करके खुद दुविधाओं एवं यातनाओं भरा जीवन जीने को बाध्य है। दलित की ऐसी अवस्था का डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने ' संगठन-शक्ति ' नामक कविता में मधुमखी के प्रतीक के द्वारा बयान किया है -

" मधुमखियाँ / संचित करती है / मधु / छत्तों में / फूलों की कलियों से
तीक्ष्ण काँटों की / परवाह न कर / निज स्वार्थ को दूर रखकर
लोक हितार्थ की भावना से / कोई निष्ठुर हाथ / बलात्कार कर
मधुमक्खियों से / उड़ा ले जाता है / मधु भरे छत्ते को

* * * * * * * * * * * * *

ये खेतिहर-मजदूर / दलित-शोषित / अपने खून पसीने से / बढ़ाते रहें हैं
देश की संपदा को / बलात्कार कर / समृद्धों ने / समाज की समता
न्याय-धर्म को / ताक पर रख / लूटा है / दोनों हाथों से / उसे
और / इसलिए / आज भी वे / निर्धन है , असहाय है
श्रमवीर मधुमक्खी की तरह । " [18]

दलितों की मेहनत का फल अभिजात वर्ग ने अधिकार पूर्वक छीन लिया है । जिस सामृध्य को वह भोग रहा है, उसका निर्माता ही उसके लिए अस्पृश्य , अपवित्र, अप्रिय , अग्राह्य है। भद्र-वर्ग दलितों को दलनीय मानता है और उसके दलन में कोई कमी नहीं रखता। चालाक लोग धर्म एवं शास्त्रों की दुहाई देकर उसके पैर-पंख बाँध देता है और फिर यही मदान्ध हाथी उनको अपने पैरों से घसीटता-रगड़ता रहता है । दलित कवि मलखान सिंह ने ऐसे मदान्ध सफ़ेद हाथी के प्रतीक-प्रयोग द्वारा अत्याचार एवं बर्बरता का वेधक निरूपण किया है-

" गाँव के चन्द चालाक लोगों ने / लठैतों के बल पर / बस्ती के स्त्री-पुरुष और
बच्चों के पैरों के साथ / मेरे पैर भी / सफ़ेद हाथी की पूंछ से
कस कर बाँध दिए हैं / मदान्ध हाथी / लदमद भाग रहा है
हमारे बदन / गाँव की कंकरीली
गलियों में घिसटते हुए / लहूलुहान हो रहे हैं । " [19]

इसी संदर्भ में आगे कवि ने दलित समाज के अज्ञान एवं अंधविश्वासों के अंधेरों से भरी गलियों का वर्णन किया है तथा साथ ही साथ दलितों के आंतरविग्रह को भी प्रतीकात्मक ढंग से उजागर कर दिया है ।

" अँधेरा बढ़ता जा रहा है / और हम अपनी लाशें / अपने कन्धों पर टाँगे
संकरी-बदबूदार गलियों में / भागे जा रहे हैं / हांफे जा रहे हैं
अँधेरा इतना गाढ़ा है कि / अपना हाथ / अपने ही हाथ को पहचानने में
बार-बार गच्चा खा रहा हैं । " [20]

दलितों के ऊपर हो रहे इन जघन्य अत्याचारों एवं पापाचारों का एक मात्र मूल समाज में व्याप्त मनुनिर्मित वर्ण व्यवस्था ही है । इसलिए दलितों के लिए यह जन्माधारित वर्ण व्यवस्था को नेस्तनाबूद करना एवं कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था की संभावनाओं को ढूँढना अनिवार्य बन चूका है । अतः दलित साहित्यकारों ने इस अतार्किक एवं अमानवीय समाज व्यवस्था को विभिन्न प्रतीकों के द्वारा निरर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया है और विभिन्न प्रतीकों के द्वारा इस वर्ण-व्यवस्था पर प्रश्न उठाए हैं ।

" तीन आदमियों के आगे / भोजन की थाली है / चौथे के आगे
थाली खाली है / तीन आदमियों के बदन पर / रेशमी परिधान है
चौथे का बदन / उघडा है

* * * * * * * * * * *

तीन आदमी देश के / प्रथम दर्जे के / नागरिक हैं / चौथा आदमी देश का
दोयम दर्जे का / नागरिक है / यह चौथा आदमी / इन तीनों की
आँखों की किरकिरी है / मेरे देश की आजादी / सिरफिरी है । " [21]

भारतीय समाज व्यवस्था में त्रिवर्णों के लिए अनेकानेक अधिकार निश्चित किये गए हैं , जबकि दलितों या शूद्रों को अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं के बंधन में बाँध दिया गया है । भारतीय संस्कृति पेड़-पौधे , जानवरों को पूजती है लेकिन शूद्रों से नफ़रत करती है । अजीब-सी बात है कि कुत्ता तक मंदिर में प्रवेश कर सकता है अछूत नहीं । यही भारतीय समाज की धर्मव्यवस्था है । आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष नष्ट नहीं हो सका है , आज भी

शोषक एवं शोषित वर्गों का सामाजिक , आर्थिक , वैचारिक एवं साहित्यिक संघर्ष जारी है । अभिजात्य समुदाय आज भी कई अधिकारों को अपने लिए अबाधित रखने की चेष्टारत है । वह हर प्रकार की सुख-सुवधाओं का अधिकार पूर्वक उपभोग कर रहा है और इसी सुविधाओं का निर्माता शोषित वर्ग अभावों की जिंदगी जी रहा है । कवि अशोक भारती ने अपनी कविता 'दीया और रोशनी' में इस बात को प्रतीकात्मकता से प्रभावी बनाया है ।

" दीया / अंधेरी झोपड़ियों का नसीब है ,
और सूरज / विशाल अट्टालिकाओं का गुलाम,
यह हालत यूं ही नहीं बदलेगी । " [22]

भारतीय समाज के 'अधार्मिक' एवं 'उत्पीड़न-प्रेमियों' ने दलित-दमन में किसी भी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी है । समय बदल रहा है, विश्व बदल रहा है लेकिन इन लोंगों की मानसिकता में कोई परिवर्तन नज़र नहीं आ रहा है । ऐसे शोषक समाज को कँवल भारती ' आदम खोर बाध ' मानते हैं , जो अपना वहशीपन नहीं छोड़ पाता है ।

" पिछली सदी का इतिहास बोध / नई सदी में
मार्गदर्शन कैसे करेगा / अगर ये आदमखोर बाध भी
होंगे नई सदी में ? " [23]

समय हर मरज़ की दवाई है , समय के चलते सब ठीक हो जाएगा ऐसी अकर्मण्य मानसिकतावाले अपने ज्ञातिबंधुओं को कवि ने सचेत किया है । साथ ही साथ नये समाज के निर्माण का सपना देखनेवालों से भी इस ' आदमखोर बाध ' का शिकार करने का आहवान किया है ।

दलित समाज ने यह बात गाँठ बाँध ली है कि अगर उसे इन पापाचारो एवं अत्याचारों से मुक्ति चाहिए तो उसे खुद ही इसके ख़िलाफ़ संघर्ष करना होगा । इसीलिए उसने शिक्षाप्रप्ति एवं संगठन शक्ति को मजबूत बनाने का बीड़ा उठाया है । दलित साहित्य उसी मुक्ति-आंदोलन का एक हिस्सा है । कवि सुखवीर सिंह ने

भयाक्रान्ताओं एवं अनाचारों के बीच पनपती मुक्ति-ज्वाला को प्रतीकों के प्रयोग से बखूबी चित्रित किया है ।

" लेकिन यहाँ पर / लम्बी- लम्बी हींस के झुण्ड के झुण्ड / ज़रूर है
जिनके बीचों-बीच छिपी है / एक मजबूत इरादोंवाली वह लाठी
बूढ़े हाथों ने जो / सहेजकर रखी थी / वक्त-जरूरत के लिए / हमेशा ! " [24]

दुःखद बात यह है कि दलितों में भी आतंरिक वर्ग-व्यवस्था पायी जाती है , जो उन्हें एक नहीं होने देती । भद्र समाज इसका बेजा फायदा उठा रहे हैं और दलितों को अलग-अलग रखकर उनको चूसता रहता है । धन , सम्मान , नौकरी आदि के प्रलोभन से उन्हें वश में करके मनचाहे कार्य करवाता है । इसके खिलाफ़ कवि अशोक भारती ने प्रतीकों के द्वारा विद्रोह किया है , वे कहते हैं कि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु तो होगी ही, यही शाश्वत सत्य है लेकिन मृत्यु-मृत्यु में भी अंतर होगा- " कुछ मरेंगे / न सूअरों की तरह / न ही चूहों की तरह
वह मरेंगे / मुठ्ठी तान , जय भीम कहते हुए । " [25]

दलित पहले धर्म एवं शास्त्रों की अमानवीय परंपराओं के सामने लाचार , मजबूर या उदास था , उसने अपने पशुवत् जीवन को ही अपनी नियति मान लिया था , लेकिन आज का दलित शिक्षा प्राप्त करके अपने अधिकारों एवं अस्तित्त्व के लिए जागरूक बन गया है । अब वह मजबूर या उदास नहीं है । वह यह जान चूका है कि संघर्ष ही सफलता की नींव है और संघर्ष ही उसकी नियति भी। दलित कवि सी.बी.भारती ने आज के शिक्षित एव संघर्षरत दलित के लिए 'तितली' के प्रतीक का सचोट प्रयोग किया है । यहाँ 'तितली' पूरी दलित जाति का प्रतिनिधित्व करती दिखाई देती है ।

" किन्तु आज तितली उदास नहीं है / अब तितली बेजुबान नहीं है
षड्यंत्रों से अनजान भी नहीं है वह / सीख लिया हैं उसने संघर्षों से-
जीने के लिए मरना । " [26]

उपरोक्त पंक्तियों में 'जीने के लिए मरना' यह पंक्ति शब्द चमत्कृति का साक्षात्कार तो करवाती ही है , साथ ही साथ में अर्थ व्यंजना से तितली के प्रतीक की वैज्ञानिकता भी सिध्ध करती है । प्राचीन काल से हो रहे दलित दमन को देखकर क्या सवर्ण समाज में किसी को भी कोई हमदर्दी नहीं हुई होगी? किसी ने भी इस अमानुषी अत्याचार को रोकने का प्रयास नहीं किया होगा? या उनकी मर्यादाओं एवं परंपराओं ने उन्हें रोक रखा होगा ? वर्ण-व्यवस्था के पिंजड़े में छटपटाती मुक्ति-वेदना किसी के कानों तक क्यूँ नहीं पहुँची? इस तथ्य की छान-बीन करते हुए कंवल भारती ने ऐसे सह्रदय लेकिन मजबूर या लाचार लोगों की अकर्मण्यता को प्रतीकों के सहारे उकेरा है -

" शायद ऐसा हो कि तुम्हारी अन्तरात्मा ने / पिंजड़े में फड़फडाते पक्षी की वेदना को / समझा हो / खोलना चाहा हो उसकी मुक्ति का द्वार
कि तभी किसी वृध्ध सदस्य ने कहा होगा / यह पिंजड़ा खानदानी है
बरसों बरस से हमारे सम्मान का प्रतीक है / और तुम्हारी अंतरात्मा सलीब पर टंग गयी होगी / प्रतिष्ठा के प्रश्न पर । " [27]

दलित साहित्य की भाषा पर अनेकानेक आरोप लगाकर इस साहित्य के औचित्य पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया गया है । दलित साहित्य की भाषा में कलात्मकता का अभाव है , भाषा में सपाट बयानी है , गद्यात्मक भाषा है , अश्लिल भाषा है आदि अनेक प्रकार के आरोपों का सामना कर रहा है, दलित साहित्य । ध्यातव्य है कि दलित रचयिता पुराने धार्मिक मिथकों का नवीन और मानवीय संदर्भों में आकलन करते हैं । ठीक जैसे कबीर ने अपनी रचनाओं में किया था । कबीर की भाषा को ब्राह्मणवादी आलोचकों ने भाषिक कला के मुखौटे में छिपाने का प्रयास किया है । लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि इस मुखौटे को उतार देते हैं और अपनी भाषा की तुलना कबीर की भाषा से करते है । कबीर की चदरिया के प्रतीक के द्वारा कवि ने दोनों भाषाओं के साम्य को बताया है-

" मेरी रक्त शिराओं में / हर रोज धूल रही है दहशत / फिर भी
में बार-बार जोड़ता हूँ / विखंडित शब्दों को
चिंदी-चिन्दी उस चदरिया की तरह / जिसे ओढ़कर
कभी निकला था कबीर / बनारस की गलियों में । " [28]

दलित साहित्य पारंपारिक काव्यशास्त्रीय सौंदर्य के मापदन्डों को अमान्य करता है और नए श्रम-सौंदर्य का निरूपण करता है । संघर्ष, विद्रोह एवं आक्रोश ही उसका सौंदर्य है। अपनी भाषा को अपमानित होती देख उसकी अंतरआत्मा कराह उठती है, अपने साहित्य की साहित्यिकता पर हमला होते देख दलित कवि सूरजपाल चौहान तिलमिला उठते हैं -

" तोड़ रहा है / हमारे सौंदर्यशास्त्र के किले / और प्रतीकों को
अपनी लेखनी की / पैनी नोंक से । " [29]

इन्हीं पंक्तियों को हम सवर्ण साहित्यकारों के तथाकथिक वैचारिक आंदोलन के संदर्भ में भी देख सकते हैं । सवर्ण साहित्यकार दलित लेखकों की लेखनी की पैनी नोंक से अपने सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों के किले को बचाने के चक्कर में नज़र आता है । इस प्रकार दलित साहित्यकारों ने अपने नवीन प्रतिमानों के द्वारा काव्य साहित्य को समृद्ध ही किया है ।

6.6.2 सफल बिम्बांकन

प्रतीकों एवं प्रतिमानों की तरह बिम्ब भी साहित्य की भाषा को पैनी एवं प्रभावी बनाते हैं । बिम्बांकन या छायांकन के द्वारा रचनाकार अपनी संवेदनाओं का प्रत्यक्षीकरण पाठक को करवाता है । दलित साहित्यभाषा के बिम्ब भी दलित जीवन की त्रासदी और उसके जीवन के यथार्थ को व्यंजित करते हैं । दलित साहित्य में बिम्बात्मक अभिव्यक्ति का विशेष महत्व है , ये बिम्ब उनकी मुक्ति की छटपटाहट को प्रत्यक्ष बनाते हैं । दलित रचयिता इन्ही बिंबों के सहारे समाज के सामने सीना तानकर संघर्ष के लिए खड़ा हो जाता है । प्रखर आलोचक हरिनारायण ठाकुर का

कहना है कि " दलितों की मुक्ति चेतना उनके साहित्य में राजनीतिक-सामाजिक प्रपंचों को तार-तार कर दलितों की दूसरी आजादी के सपने बुनती हुई एक से बढ़कर एक बिम्बों का सृजन करती है ।" 30

दलित लेखक या कवि अपने विशिष्ट एवं सार्वत्रिक उद्देश्यों को लक्ष्य बनाकर अपनी रचनाएँ करता है । इसके लिए उसे जहाँ भी , जैसा भी , जो भी परिवर्तन अनिवार्य लगता है , उसे अपने साहित्य में पिरो देता है और इस कार्य में बिबांकन उसका प्रमुख हथियार बन जाता है । यहाँ हम दलित काव्य साहित्य में प्रयुक्त बिभिन्न बिंबो का उल्लेख करेगें ।

दलित साहित्य में द्रश्य बिम्ब , ध्राण बिम्ब , ध्वनि बिंब आदि सभी प्रकार के बिम्बों का प्रयोग हुआ है । अतः इस साहित्य की भाषा को सपाट बयानी के आरोप से बाईज्जत बरी कर देनी चाहिए । सवर्णों के द्वारा किये जानेवाले बर्बरता पूर्ण अत्याचार का सफल बिबांकन करती हुईं दलित कवि मोहनदास नैमिशराय की रचना देखिए - " उनका शोर सुनकर / माताओं के स्तन मुँह में डाले / बच्चे चौंक उठते

हैं / साँकल , सिटकनी , चौक करते / कमजोर दरवाजों को छूकर
उनकी ताकत का अहसास करते हैं / कुत्ते सतर्क हो उठते हैं
और आदमी / अपने-अपने भुतहा-कटघरों में / अपनी धडकनों को ही
सुनने का प्रयास करते हैं । " 31

दलितों की बेबसी एवं कमजोरी का यथार्थ चित्रण इन पंक्तियों में बिंबित होता है । इसी क्रम में ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों की अवदशा का वर्णन करते हैं । दलितों की दीनता , अज्ञान एवं अंधविश्वासों को उन्होंने बखूबी निम्नलिखित बिम्ब में कैद कर लिया है -

" कच्चे घर में / जलते दीये की रोशनी पर / कब्जा करके बैठ गये हो तुम ।
लौ के ठीक ऊपर काला धुँआ है / जो पर्त दर-पर्त / कालिख पोत रहा है
दीवार पर / नीचे गहरा अँधेरा है / जिसमें दीपदान को पकड़ें खड़ा हूँ मैं
हजार-हजार बर्षों से अनवरत । " 32

दलित साहित्य में अनेक बिम्ब रचनाएँ पायी जाती हैं। दलित काव्य साहित्य की बात करें तो उसकी बिम्ब रचना में एक विशिष्ट बात पायी जाती है , कि दलित साहित्य के बिम्ब अपने आप में कथात्मकता की विशेषता भी रखते हैं और अपने आप में विविध प्रतिमानों को समाविष्ट कर लेते हैं। कहीं-कहीं तो प्रतीक , बिम्ब , कथात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता का संगम देखने को मिल जाता है -

" लड़की को उठा ले जाता है / साठ साला भेड़िया / अनेक लड़कियाँ
लडकी के माँ-बाप ने / नहीं सिखाया विरोध / मान लिया बोझ और
कर लिया सब्र / क्योंकि अँधेरा
कुदरत का नहीं , समाज का है। " 33

यहाँ काव्यकला का उत्तम नमूना प्रस्तुत हुआ है। एक तरफ यहाँ दलित-दलन है तो दूसरी तरफ नारी-ताड़न भी, यहाँ प्रभुवर्ग की मनमानी ऐयाशी भी है और दलितों की कमजोरी भी है। यहाँ लड़की और भेड़िया क्रमश: दलितवर्ग एवं शोषक वर्ग के प्रतीक बनकर उभरे हैं , वहीं लडकी को बोझ मानने की संकुचित विचारधारा पर भी प्रहार किया गया है। अंतिम पंक्तियों में अँधेरा समाज के अज्ञान का प्रतीक है। इसी क्रम में सी.बी.भारती की रचना भी उल्लेखनीय है। भारतीजी ने भी दलित मजदूरों की पीड़ा एवं बेबसी का व्यंग्यात्मक एवं कथात्मक बिम्बांकन किया है-

" कलुआ ने आज भी / पसीना बहाया / मजूरी की पूरा दिन
पूरा दिन / मसक्कत की जी भरकर / कलुआ ने आज भी
मालिक से मजूरी मांगी / आज भी कलुआ ने / मिन्नत की मालिक से-
मगर आज भी मिली / बस कलुआ को झिड़की
आज भी कलुआ को टरका दिया / मालिक ने कल पर।

* * * * * * * * * * * * * *

सीमाहीन महाशून्य / सोचने लगा कलुआ /
कि लेकर हाथ में इन्साफ़ का तराजू-
ईश्वर जो न्याय करता है। " 34

कहना न होगा कि यहाँ कविने कलुआ के माध्यम से समस्त मजदूर वर्ग की लाचारी एवं दयनीयता को तादृश किया है । वहीं भगवान के ऐसे अंधे न्याय पर सवालिया निशान भी लगा दिया है । दलित साहित्य की भाषा की मारकता और बिबांकन की ही बात चली है तो हम ओमप्रकाश बाल्मीकिजी की झाडूवाली कविता को कैसे भूल सकते हैं । रामेसरी जब झाडू और लोहे की गाडी लेकर सुबह में निकलती है तो उसकी गाड़ी की कर्कश आवाज़ से सवर्ण समाज की भ्रमणाओं के किले डगमगाने लगते हैं । यह आवाज जैसे दलित विद्रोह का आग़ाज बन जाती है ।

" सूबह पाँच बजे / हाथ में झाड़ू थामे / घर से निकल पड़ती है
रामेसरी / लोहे की हाथ गाड़ी धकेलते हुए /
खडांग-खडांग की कर्कश आवाज़ / टकराती है / शहर की उनींदी दीवारों से
गुजरती है / सुनसान पड़े चौराहों से / करती हुई ऐलान
जागो ! / पूरब दिशा में लाल-लाल सूर्य / उगनेवाला है । "[35]

यहाँ पर रामेसरी का ऐलान समग्र दलित समाज का ऐलान है । लोहे की हाथगाडी दलित जीवन की कठितम सच्चाइयों का प्रतीक है । वहीँ खडांग-खडांग में हम ध्वनि बिम्ब का चित्रण भी पाते हैं । ध्यातव्य है कि पाश्चात्य संस्कृति की और आंखे मूँदकर भागनेवाले भारतीय समाज को पूरब से आनेवाली लाल क्रांति का आग़ाज किया है । वाल्मीकिजी की यह पूरी कविता ही सफल एवं सार्थक बिम्ब योजना का उत्कृष्ट उदाहरण है । ऐसे ही परिवेश की बिंब योजना से युक्त निम्नलिखित पंक्तियाँ भी उस परिवेश का साक्षात्कार कराने में सफल सिध्ध हुई हैं ।

" मुर्गा नहीं बोला चिड़ियाँ नहीं चहकीं / सूरज नहीं डोला
सुबह के धूमिल उजियारे में चल पडी है चंद्रो ।
हाथ में टोकरा झाडू लिए / पीछे रह गये मासूम पिंकी, बबलू , छोटू
सो रहें हैं एक-दूसरे से चिपट / तीनों जब उठेंगे माँ को ना पा
रोएँगे , लड़ेंगे , कटोरदान में रोटी ढूंढेंगे / दूसरों को स्कूल जाते देख बिसूरेंगे
चंद्रो करेगी गलियाँ झाडू से साफ़ । "[36]

रामेसरी के समान चंद्रों भी समाज में 'सफ़ाई' का काम करती है । यहाँ बच्चों के आधुनिक नाम आज के समाज का प्रतिबिम्बन करता है , लेकिन दृष्टव्य है कि आज भी बबलू , पिंकी , छोटू शिक्षा से वंचित है । रामेसरी के समान चन्द्रो की आर्थिक स्थितियाँ भी तंग हैं । चंद्रों और रामेसरी दलित समाज के संघर्ष की प्रतीक बनकर उभरी हैं । इसी क्रम में कर्मशील भारती की कविता ' मजूरन' में व्यक्त दलित-नारी का बिम्ब उदधृत करना प्रासंगिक होगा –

" वह / प्रतिदिन निकल जाती है घर से / भोर होने के साथ-साथ
लेकर हाथ में / एक बड़ा-सा चुम्बक / लटकाए कंधे पर
एक लम्बी-सी झोली / पीठ पर लटकाए / अपने जिगर का टुकड़ा
जो लिपटा हैं कपड़े की एक और / झोली में / वह खोजती / बिनती है- लोहा
अपनी महेनत के प्रति / निराशा भी नहीं है , भविष्य के लिए । " [37]

यदि दलित साहित्य की इन तीनों रचनाओं की तुलना सूर्यकान्त त्रिपाठी ' निराला ' की ' वह तोड़ती पत्थर ' कविता के साथ की जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि तीनों कविता की भावात्मक वेधकता एक समान है । विशाल अट्टालिकाओं को देख अपनी संघर्षमयी वेदनाओं को आँखों से व्यक्त कर देनेवाली ' निराला' की श्रमिका रामेसरी और चंद्रों के संघर्ष की परिचायिका भी नज़र आती है । फूटपाथ पर बैठकर पत्थर तोड़ती एवं अल-सुबह गलियारों में घूमकर 'सफ़ाई' करनेवाली रामेसरी एवं चन्द्रो के सजीव बिंबांकन ने दलितों एवं मजदूरों के शोषण को बखूबी भावाभिव्यक्ति प्रदान की है ।

दलित रचनाकारों ने अपनी भाषा में बिंब के सहारे अपने एवं अपनों के ऊपर हुए बर्बरतापूर्ण अत्याचार को सजीव किया है । उन्होंने अपने जीवन की त्रासदियों के छायांकन के द्वारा अपनी वेदना को एवं साथ ही साथ अपनी संघर्ष चेतना को सर्वग्राही बनाया है । दलित कवि मोहनदास नैमिशराय अपने अनुभवों की ह्लदय विदारक बयानी करते हैं -

"मेरी बस्ती में / जब गोली चली / नजदीक के कच्चे मकान से
मैंने किसी के कराहने की आवाज सुनी थी / और पुलिस के खौफ़नाक दस्ते के
पास आने की भी / खिड़की दरवाजे / सब बंद कर लिये थे मैंने
गोलियाँ चलने की आवाजें / नजदीक आने लगी थीं / मैंने भयभीत हो
लिहाफ में मुँह डाल लिया था /मेरा मकान , किसी खंडहर की तरह
कांप रहा था । " 38

हम बार बार कह चूके हैं कि भुक्तभोगिता दलित साहित्य का प्राणतत्व है । दलित कवि अपने स्वानुभवों को जब कलम से सर्वग्राही एवं प्रत्यक्ष बनाता है , तब काव्यशास्त्रीय मर्यादाएँ उसका रास्ता रोक नहीं सकती कारण यह है कि भाषा के तथाकथित सौंदर्य को बढ़ाने हेतु वह अपनी अनुभूतियों से समझौता नहीं करता , उसे अपने लेखन के द्वारा मुक्ति का सपना सार्थक करना है, अतः वह अपनी अनुभूतियों से ही वफादार रहता है । दलित कविता में आए चित्र काल्पनिक नहीं है, बल्कि स्वयं देखा हुआ यथार्थ है और इसलिए अधिक साफ़ एवं स्पष्ट तथा मारक है । चित्रमयी भाषा दलित साहित्य की अपनी धरोहर है । हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य में संवेदनाओं एवं वेदनाओं की चित्रमयी अभिव्यक्ति अपने चरम को छूती है। कविवर ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने आधुनिक नगर व्यवस्था में पनपती अस्पृश्यता की गंध को पहचाना है और वर्णवाद की बदबू के अस्तित्व को प्रमाणित किया है-

" नगरपालिका की सूनसान सड़कें / धुंधलकों की जमात में
टिमटिमाते इक्का-दुक्का तारे / कान पर जनेऊ लपेटे / गुनगुनाते स्वर में
श्लोक रटता हुआ पास से गुजरता पंडित / चाय की दुकान के फट्टे पर
चीकट मटमैली चादर में लिपटा ऊँघता नौकर ,
भट्ठी के पास लेटा कुननुमाता झबरा कुत्ता / चौंकते हैं / पास से गुजरती
लौहे की गाड़ी की आवाज़ पर / कोसते हैं जी भर कर । " 39

अगर नगरों का यह हाल है तो भारत के गाँव तो निश्चित रूप से दलितों एवं शोषितों के लिए नरकागार ही होंगे । ग्रामीण परिवेश में अस्पृश्यता की भयानकता का वर्णन निम्नलिखित बिंब में हुआ है-

" वे छोटे-छोटे बच्चे / खेल रहे थे / सितोलिया / कपड़े की गेंद बना
पुराने खण्डहरनुमा मंदिर के पास

* * * * * * * * * * * * * * * * * * * *

सब भूलकर अपनी जात / मंदिर के इर्द-गिर्द / दौड़ रहे थे चिल्लाते
एक का निशाना चूका / गेंद गई जीर्ण-शीर्ण मंदिर में
वह भी पीछे-पीछे गया खोजने / वहाँ बैठा था / मोटी तोंद
चोटीवाला एक पुजारी / उससे रहा नहीं गया / एक अछूत का
अनायास मंदिर में घुस आना / जहाँ था / वह और उसका भगवान
पंडित ने / उस बालक को / मारा दण्डे से / किया लहूलुहान
उस रोते अबोध बालक को बचाने / वहाँ क्यों प्रकट नहीं हुआ
भगवान / अंधा-बहरा । " [40]

दलित साहित्य की सामाजिक उपादेयता को हमेशा संदेह के दायरे में रखने का घिनौना प्रयास होता रहा है । दलित साहित्य सिर्फ रोना-धोना एवं विद्रोह का साहित्य है , उसमें राष्ट्रचेतना-सामाजिक चेतना का अभाव है , वह एकाकी है , ऐसे अनेक प्रकार की भ्रमणाओं का मकड़जाल बुनकर दलित साहित्य का दलन करने की कुचेष्टा होती रही है । दलित कवि मोहनदास नैमिशराय ने इन सभी षडयंत्रों का पर्दाफाश करते हुए अपनी कविता ' रात में डूबा लोकतंत्र और वे ' में आधुनिक लोकतंत्र एवं राजनीति का 'चीर हरण' किया है -

" वे आ गये / हाथों में बर्छी / रिवोल्वर नंगी तलवार / कट्टे लिये
राजनीति के अलंबरदारों से भरी जीप गाडी
होंडा / मारुती / फिएट / एब्सर्ड

आते ही सीढियाँ लें / चुनावी नारों से पटी दीवारों से
पोस्टर उतारना आरंभ कर देते / उछलते / गीत गाते / ढोल बजाते
उनमें नायक से खलनायक सभी होते / वे चंबल , भिंड , मुरैना के बीहड़ों की
पैदाइश न होते / प्रतिक्रियाओं के बीच जन्मे , पले
महानगरीय संस्कृति के मुखौटे होते । " [41]

इन पंक्तियों में जितना आधुनिक लोकशाही का नंगा सच है, उतनी ही युवा पीढ़ी के भटकने की वेदना भी है । महानगरीय संस्कृति के पाश्चात्यवाद से भरे माहौल में राह भूले लोगों की चिंता जताकर कविने दलित कविता की सामाजिक-चिंता एवं राष्ट्रीय सस्कारों को प्रमाणित किया है ।

दलित कविता में आये दृश्य बिम्ब सजीव, सार्थक , सफ़ल , सटीक एवं सर्वग्राही हैं । बिम्बों की इस विशिष्टता का मूल दलित लेखकों की स्वानुभूति ही है । दलित साहित्यकार आँखों देखी या कानों सुनी नहीं आप बीती लिखता है , इसलिए विषय वर्णन में प्रमाणिकता झलकती है । अपने लेखन को 'साहित्यिक' बनाने के लिए वह कभी भाषा या अनुभवों का अतिक्रमण नहीं करता । दलित कवि सुखवीर सिंह ने अपने बचपन का सजीव चित्रांकन किया है -

" ओ मेरे गाँव ! / जाड़े के दिनों में
हल्की मुलायम-सी पीली-पीली धूप के नीचे / किसी दीवार से पीठ टिका
गन्ने चूसने का स्वाद / अभी भी मुँह में घूल-घूल जाता है
और जिन छिलकों को गन्ने की पोरी-पोरी से / उतार-उतार
फेकतें रहे थे दगडे में दिन भर / उन्हीं को समेट कर साँझ ढले
जला लेना ' पूर' / और बैठ जाना हुक्कों की गुदगुदाहट के बीच
परियों-दानवों के बीच की दुनिया में जाने के लिए । " [42]

दलित कवि की इस अभिव्यक्ति की तुलना जन्मांध कवि सूरदास से की जाए तो हम पाएँगे की भावनात्मक स्तर पर दोनों साहित्य समान है । सूरदास ने कृष्ण के बाल्यकाल की कल्पना करके लिखा था जबकि दलित साहित्य में केवल और केवल

अनुभूति का यथार्थ व्यक्त होता है और कल्पना एवं यथार्थ दोनों में ज्यादा प्रमाणिकता किसमें होती है , यह यह कहने की जरुरत नहीं जान पड़ती । इस दृष्टि से देखा जाए तो दलित साहित्य को आप 'सर्वोच्च' न मानो तो 'समान' तो मान ही सकते हो । दलित साहित्य ने अभिजात साहित्य के सौंदर्यमूलक उपकरणों को अलग नजरिये से देखा है , ये उपकरण उसके लिए सौंदर्यानुभूति का साधन नहीं बने हैं , लेकिन उनके अमानवीय शोषण एवं दलन के माध्यम बने हैं ।

" सुन्दर सा घरौंदा बसा होता गुलमहोर तले
केवल कंगना खनकते होते / रोज ही उदित होता चन्द्रमा झरोखे में ,
सितारों से परे एक दुनिया होती / भरे पेट में अजी देखा होता यदि चन्द्रमा ,
हम किसी को याद करते । " [43]

भूखे पेट तो भजन भी नहीं होता तो सौंदर्यानुभूति की तो कल्पना भी असंभव है । दलितों की दीनता एवं हीनता उनके ऐसे कितने ही अभावों और दुःखों की जनेता है । दलित साहित्य में उभरती ये वेदना ऐसे बिम्बों से ही अभिव्यक्ति पाती है। दलित साहित्य काव्यशास्त्रीय सौंदर्यानुभूति करवाने की कलम-तोड़ कोशिश नहीं है, बल्कि अपने भोगे हुए यथार्थ की मूक वेदना की शब्दाभिव्यक्ति है , साहित्य क्षेत्र में अपने आप को अव्वल सिध्ध करके सम्मान एँठने और वाह-वाही पाने की कामना नहीं हैं , अपने दलन-दस्तावेज की प्रस्तुति के द्वारा अपने बंधुओं को जागृत एवं संगठित करने की संनिष्ठ तड़पन है । अपने अलसाये एवं निंद्रित बंधुओं को जगाने हेतु कवि अपनी कृशकाय एवं बेवजूद हालत बयाँ करता है -

" कृशकाय , अधनंगा / दुबला-पतला / घसी हुई आँखें
निकलें हुए दांत / एक अस्थिपंजर-सा
बोला – श्रीमान / हम सब मरे हुए ही हैं ।
तनिक सोचिए / ऐसे बर्बर अनाचार , अत्याचार
क्या किसी जिदां , इन्सान पर किए जाते हैं ? " [44]

दलित साहित्य ऐसे अनेकानेक बिम्बों से भरा हुआ है । जहाँ एक और यह बिम्ब उनकी अभिव्यक्ति की धार निकालते हैं , वहीं ये बिम्ब दलित साहित्य-भाषा पर लगे आरोपों को निराधार एवं निरस्त्र बनाते हैं । यदि बिम्ब वैविध्य की दृष्टि से देखा जाए तो भी यहाँ अनके प्रकार के बिम्बों की योजनाएँ पाई जाती है । उपरोक्त द्रश्य बिंबों के साथ-साथ ध्वनि बिम्बों के दर्शन भी होते है । दलित साहित्य बिम्ब वैविध्य से अछूता नहीं है । इसमें अनेक प्रकार की बिम्ब-योजनाएँ दृष्टिगत होती हैं । दलित कवि सूरजपाल चौहान अपनी वेदना एवं विद्रोह को सुंदर ध्वनि बिम्ब के सहारे अभिव्यक्त करते है ।

" सच कहता हूँ / मर जाएगी तुम्हारी नानी

* * * * * * * * * * * * * * * *

सूअरों की ढ़ों-ढ़ों / कीचड़ में लिसड़ते

कुत्तों की भौं- भौं / पता बताएगी तुम्हें / एक नए स्वर्ग का

मेरे गाँव की भंगी बस्ती में / न्योंता है तुम्हें । " [45]

यहाँ सुवरों की ढ़ों-ढ़ों और कुत्तों की भौं-भों के द्वारा कवि ने दलितों को कैसे कैसे माहोल में जीने के लिए बाध्य किया जाता है , उसका प्रतीकात्मक वर्णन कर दिया है । यहाँ ध्वनि बिंबांकन के द्वारा दलित बस्तियों के बीभत्स माहौल को चित्रित किया गया है । कवि सूरजपाल चौहानजी ने ऐसे ध्वनि-बिम्बों की रचना की है जो अलंकारिक लयबध्धता के उत्त्कृष्ट उदाहरण बन पड़े हैं । ' जोगिया गीत ' में कविने ध्वनियों को ही अपने गीत का मुखड़ा बनाया है -

" तुनक तुन्ना , तुन्नक तुन्ना / भुखौ मर गयौ मेरौ मुन्ना ।

महतारी काँटे सी सुखी / बाप है जैसे चुसौ गन्ना / तुन्नक तुन्ना । " [46]

यहाँ पर कविने गीत की धुन में अपनें जीवन के कटु यथार्थ को पेश कर दिया है । पहली दृष्टि में गेय लगनेवाला यह गीत वास्तव में दलित शोषण की वेदना है । अपनी शोषण-पीड़ा को ध्वनि-बिम्ब के सहारे गेयता बक्षना कोई मामूली काम नहीं है , जो कवि चौहानजी ने कर दिखाया है ।

दलित काव्य रचना जिगर का काम है क्योंकि वेदना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति करना कठिन काम है, इसिलिए दलित कविता में सौंदर्य मूलक तत्वों की पारंपरिक अभिव्यक्ति नहीं मिल पाती वह अपना अलग वेदना-सौंदर्य लिए हुए होती है । यहाँ फूलों से भरे उद्यान में ठंडी-ठंडी बयारों के बीच बैठकर काव्य रचना नहीं होती, बल्कि सुअरों और कुत्तों से भरे बदबूदार, गंदी बस्तियों में जी कर अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करना होता है । आसपास के परिवेश में व्याप्त हाहाकार एवं अत्याचार का नंगा नाच, पशुओं से भी बदतर जीवन जीते हुए लाचार- बेबस लोग और उनके सपनीले कहकहों को कलमबद्ध करने की आकुलता भरी चाह लिए दलित रचनाकार अपने रचना कर्म के पथ पर अग्रसर होता है । दलित रचनाकारों के इस मनोभावों को उनकी इस वेदना को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने शब्द दिये हैं -

" मैंने जब कलम पकड़ी / मेरे आस-पास / शाप ग्रस्त, संज्ञाहृत
छिन्न-भिन्न / लोगों की भीड़ थी / जो चुपचाप सदियों से
पी रहे थे विषैली हवा / जिसमें बसी थी / सदियों की सडांघ
मैं चुपचाप खड़ा / देख रहा था / मनुष्यता का नग्न रूप । " [47]

सफल बिंबांकन के द्वारा वाल्मीकिजी ने अपने रचनाकर्म के परिवेश को जीवित कर दिया है । निश्चित रूप से ऐसे माहौल में, ऐसे रचनाकारों की कलम से निकली शब्दाग्नि प्रचंड एवं प्रलयकारी ही होती है। अपने मानवाधिकारों के लिए सदियों से दलित याचना कर रहा है, लेकिन आज तक वह अन्यों की नजरों में पशु बना हुआ है, ऐसे परिवेश में याचना के स्वर का विद्रोह में रूपांतरण होना स्वाभाविक ही है । दलित अब समझ चूका है कि जो मांगने से नहीं मिलता उसे छीन लेना पड़ता हैं । दलित रचनाकारों की यही मानसिकता बन गई है , वह अपने कालजयी साहित्य के द्वारा मुक्ति-आंदोलन का आह्वान करने लगा है ।- वह ढोंगी एवं शोषक धार्मिक लोगों को ललकारता नज़र आ रहा है -

" देखो ! / बंद किले से बाहर / झाँक कर तो देखो
बरफ पिघल रही है / बछेड़े मार रहे हैं , फुर्री

बैल धूप चबा रहे हैं / और एकलव्य / पुराने जंग लगे तीरों को

आग में तपा रहा है । ” [48]

सारांशतः हम कह सकते हैं कि दलित काव्य साहित्य में प्रतिमानों और बिम्बों का सफल एवं सार्थक प्रयोग हुआ है । दलित काव्य की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति अपनी अलग विशेषता बनाती है और सौंदर्यशास्त्रीय मापदंडों में अपना विशिष्ट स्थान निश्चित करती है ।

6.6.3 मिथकों का ‘ मानवीकरण ’

दलित साहित्य में पौराणिक एवं आधुनिक सभी प्रकार के मिथकों का नवीन रूप देखने को मिलता है । इसमें पौराणिक मिथकों को और अधिक मानवतावादी दृष्टिकोण से देखनेका प्रयास किया गया है । दलित साहित्य ने ऐसे कुछ नये मिथकों का निर्माण भी किया है , जो उसके महान साहित्यिक एवं सामाजिक उद्देश्य-पथ के साथी हो । दलित साहित्य पौराणिक मिथकों की महानता को समतावादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण से देखता है । यदि मानववादी कसौटी पर वे खरे नही उतरते हैं तो ऐसे मिथकों की दंभी एवं महिमामंडित महानता का पर्दाफाश किया जाता है । इस सबंध में डॉ.हरिनारायण ठाकुर का मंतव्य हे कि- “दलित साहित्य में मिथकों में भी पर्याप्त नवीनता देखी जा सकती है । दलित साहित्य या तो बिलकुल नए मिथकों को गढ़ रहा है या पुराने मिथकों को ही नयी परिभाषाएँ दे रहा है । अभिजात्य साहित्य के पुराने मिथक जहाँ परंपरावादी, आदर्शवादी और अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, वहीं दलित साहित्य में आकर वही मिथक यथार्थवादी एवं तर्कपूर्ण हो गए हैं । रामकी मर्यादा, सीताका पातिव्रत्य, कर्ण की दानवीरता, राजा बलि के त्याग, आरुणि और एकलव्य की गुरुभक्ति, युधिष्ठिर की सत्यवादिता आदि सभी यहाँ कटघरे मे खडे होकर नई परिभाषा और नये रूप में आते है। ” [49]

दलित साहित्य ने ऐसे सभी पौराणिक मिथकों की यथार्थवादिता को अभिव्यक्त किया है । दलित साहित्य अपनी आव़ाज को तेज बनाने हेतु नवीन

मिथकों का निर्माण भी कर रहा है - जैसे फूलन, शबरी, एकलव्य, झलकारी बाई, शम्बूक आदि । उसने पौराणिक मिथकों की महानता की अपेक्षा नवीन मिथकों की मानववादिता को ज्यादा महत्व दिया है । इसका उदाहरण देते हुए डॉ. हरिनारायण ठाकुर कहते हैं कि- “आज का दलित साहित्यकार उस गौरवान्वित , महिमामंडित झूठ को तोड़ रहा है और मिथकों के प्रभामंडल को खत्म कर उनकी सच्चाई को उघाड़ रहा है । उनकी नज़र में युधिष्ठिर जुए में पत्नी को हारनेवाला जुआरी है , अपने सामने अपनी पत्नी द्रोपदी को नंगा होते देखकर भी चुप रहनेवाला कायर पुरुष हैं। वहीं आज फूलन देवी दस्यु नहीं, बल्कि बलात्कारियों को खुद दंडित करनेवाली वीरांगना है। वह पदमिनी की तरह बलात्कार के भय से पलायन कर आग में कूदनेवाली ‘सती सावित्री’ नहीं, बल्कि बंदूकधारी फूलन है,जो बलात्कारियों को खूद दंड देना चाहती है । ” [50]

पौराणिक मिथक दलित साहित्य में आकर उनकी चमत्कारिक प्रभा से मुक्त हो जातें है और यथार्थवादी तथा मानवतावादी स्वरूप धारण कर लेते हैं । इस प्रकार दलित साहित्य में मिथकों का एक नवीन एवं विशिष्ट प्रयोग देखने को मिलता है । दलित साहित्य प्रतीक एवं बिम्ब योजना के साथ मिथकों के मानवीकरण की विशिष्टता से युक्त है । हमारा संदर्भ काव्य साहित्य से है अतः हम यहाँ दलित कविता में मिथक-योजना का यथामति आकलन करने का प्रयास करेंगे ।

दलित साहित्य उन सारे मिथकों को नकारता है जो समतावादी- मानववादी एवं यथार्थवादी नहीं है । अभिजात साहित्य ने जिनकी महानता का अतिशयोक्तिपूर्ण गुणगान किया है , वही मिथक दलित साहित्य में शोषको एवं दमनप्रेमियों के प्रतीक बने हुए हैं । कवि सूरजपाल चौहान ने अभिजात साहित्यकारों की एक पक्षीय मिथक योजना को नंगा किया है -

“ तुम्हें ! / मंगलसिंह पांडे / याद आता है / मातादीन भंगी या
बिरसा मुण्डा याद नहीं / तुम्हें / झाँसी की रानी भी याद है
लेकिन / कोरी झलकारी बाई याद नहीं / ज्ञात नहीं

उस वीरांगना की कहानी ! / हीरा डोम / या / अछूतानन्द का नाम लेते हुए
आती है तुम्हें लाज / रचते हो झूठा इतिहास । " [51]

दलित साहित्य पौराणिक मिथकों में देवत्व या आभामंडित आदर्शों को नहीं खोजता, बल्कि उनमें मानवतावाद की छान-बीन करता है। यदि वे मानववादी प्रतीत नहीं होते तो उन्हें शोषण मूलक एवं अत्याचारी व्यवस्था के प्रतीक मात्र मानता है और ऐसे मिथकों को स्वीकार ने से इनकार कर देता है । कवि वाल्मीकिजी ने पौराणिक परमात्माओं पर अपनी खीज इस प्रकार मिकाली हैं -

" राम और कृष्ण पृथ्वी के अधर्म मिटाने आए थे ,
जिन्होंने शम्बूक और कर्ण को नोचा था / तब किसी ने यही नहीं सोचा था
कि राम और कृष्ण भी उसी व्यवस्था के प्रतीक हैं
जो अन्याय और शोषण में छल और कपट से सदैव विजयी हुई है । " [52]

दलित कवियों ने अपनी रचनाओं में ऐसे अनेक मिथकों को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है जो आज तक सिर्फ आध्यात्म एवं आदर्श के ठेकेदार बने बैठे थे । पौराणिक शास्त्रों में तिरस्कृत या अनदेखे किये गए अनेक पात्रों को दलित साहित्य में नायकत्व मिला है , क्योंकि वे भी उस काल में ' दलित' हुए हैं । दलित साहित्य में कर्ण, शम्बूक , एकलव्य , सीता , शबरी , फूलन , झलकारीबाई आदि पात्रों की सहायता से दलितों की जिजीविषा और विद्रोह को प्रस्तुत किया गया है । दलित साहित्य में रामायण काल के ॠषि शम्बूक के मिथक का प्रयोग मिलता है । ॠषि शम्बूक महाज्ञानी एवं तपस्वी थे, लेकिन जाति के अछूत थे इसलिए उन्हें अपने जीवन में अनेक यातनाओं को भोगना पड़ा और अंत में उनकी तपस्या से व्यथित ब्राह्मणों की पुकार पर 'मर्यादा पुरुषोत्तम' राम ने मानवता की तमाम मर्यादाएँ तोड़कर उनका वध किया । रामायण की यह घटना उस काल में व्याप्त वर्ण भेद को तो प्रस्तुत करती ही है , लेकिन साथ-साथ परम कृपालु परमात्मा ,मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की आदर्शवादिता पर भी प्रश्नचिन्ह लगाती है । अत: दलितों के लिए

भगवान राम नहीं बल्कि ऋषि शम्बूक वंदनीय बन जाते हैं। राम के द्वारा शम्बूक-वध की वेदना को कविने इस प्रकार उकेरा है -

" ऋषियों के रक्षक / यह तुमने क्या किया - ऋषि को ,
तीर से मार दिया / पूर्वग्रहों से सधा / निशाना अचूक था
तपस्वी शायद / शूद्र 'शम्बूक' था। " [53]

अभिजात साहित्य ने पौराणिक मिथकों की महानता बनाए रखने के लिए ऐसी घटनाओं पर पर्दा डाल दिया है, या ऐसी घटनाओं को तोड़-मरोड़कर पेश किया है। रामायण के रचयिता ने तो रावण की भाँति शम्बूक की भी प्रभु के हाथों मरने की चाह थी ऐसी मनगढ़ंत कहानी बना दी है। प्रभु के हाथों मृत्यु पाकर सदेह स्वर्गारोहण का आकांक्षी था ऋषि शम्बूक और इसलिए प्रभु ने उसे 'मुक्ति' देकर उस 'शूद्र ऋषि' का उद्धार कर दिया, ऐसे अनेकानेक वैचारिक आवरणों में उस घटना की सत्यता को छिपाया गया है। ऐसे भ्रामक आवरणों का चीर-हरण दलित कवि कंवल भारती ने किया है -

" शम्बूक (हम जानते हैं) / तुम उलटे होकर तपस्या नहीं कर रहे थे
जैसा कि बाल्मीकि ने लिखा है / तुम्हारी तपस्या एक आंदोलन थी
जो व्यवस्था को उलट रही थी / शम्बूक (हम जानते हैं) / तुम्हें सदेह स्वर्ग
जाने की कामना नहीं थी, /जैसा की वाल्मीकि ने लिखा है / तुम अभिव्यक्ति
दे रहे थे / राज्याश्रित आद्यात्मा में उपेक्षित देह के यथार्थ को। " [54]

शम्बूक-कथा के यथार्थ को अनावृत करके दलित कवियों ने शम्बूक की महानता एवं राम की हीनता को प्रमाणित कर दिया है और ऐसे पूज्य मिथकों के प्रति अपनी अनासक्ति को जायज़ करार दिया है। छल-प्रपंच से वर्णवाद को मजबूती देते हुए शम्बूक-वध के कथानक को दलित कवियों ने विद्रोह की चिंगारी बनाया है-

" शम्बूक, तुम्हारा रक्त जमीन के अंदर समा गया है / जो किसी भी दिन
फुटकर बाहर आएगा / ज्वालामुखी बनकर। " [55]

शम्बूक की भाँति एकलव्य भी दलित साहित्य का नायक है । एकलव्य का कथानक भी अभिजात वर्ग के छल-प्रपंच एवं दलितो के भोलेपन को उजागर करता है । धनुर्विद्या के नाम पर ज्ञान का एक भी अक्षर न सिखाते हुए भी अधिकारपूर्वक गुरुदक्षिणा में एकलव्य से दाहिने हाथ का अँगूठा मांगना, जिससे वह जीवन भर तीर न चला सके , उस तथाकथित महाज्ञानी द्रोण के षडयंत्र का सूचक है । उस घमंडी एवं स्वार्थी द्रोण ने अपने प्रिय अर्जुन को सर्वोपरि बनाने हेतु , चालाकी से यह काम किया , लेकिन एकलव्य ने सच्ची गुरुभक्ति का उदाहरण देते हुए बेझिझक अपना अँगूठा काटकर दे दिया यह बात उसके सर्वोच्च एवं महान संस्कारो की परिचायक है । इस कथानक का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि महाज्ञानी , परम पूज्य गुरुवर द्रोण अपनी नैतिकता से गिर जाते हैं और अपने स्वार्थ-पूर्ति हेतु एकलव्य से इतनी क्रूर एवं घातकी गुरुदक्षिणा माँगते हैं, दूसरी तरफ भील कुमार एकलव्य ने अपने उच्च संस्कारों एवं नैतिकता का परिचय दिया और गुरु को भगवान मानकर अपना अँगूठा दे दिया । इस प्रकार उस महाज्ञानी द्रोण की अपेक्षा उस वनवासी एकलव्य की नैतिकता हजार गुना ऊँची दिखाई देती है। द्रोण से आदर्शों की अपेक्षा होना स्वाभाविक था, लेकिन उन्होंने अपनी व्यवहारवादी मानसिकता का परिचय दिया और अपने स्थान से गिर गए , जबकि एकलव्य ने उच्च आदर्शवादिता का परिचय देकर अपना स्थान अपने गुरु से भी ऊँचा कर लिया ।

अभिजात साहित्य ने द्रोण की कपटलीला को छुपाने के लिए एकलव्य की गुरुभक्ति के खूब गाने गाए हैं । लेकिन दलित साहित्य को इस प्रकार सत्य को छिपाना कभी गँवारा नहीं है । इसने द्रोण के कपट के साथ साथ एकलव्य के भोलेपन को भी प्रस्तुत किया है । एकलव्य ने सिर्फ अँगूठा ही काटकर नहीं दिया अपने पूरे वर्ग का , पूरे समाज का अस्तित्व ही दे दिया है ।

" एकलव्य ! / तुम्हें भोला भंडारी कहूँ या ज्ञानी मूर्ख
जो अँगूठा काटकर / दे बैठे एक ऐसे गुरु को / दक्षिणा में
जिसने तुम्हें नहीं सिखाया था / क-ख-ग भी / धनुर्विधा का ,

और बना दिया तुम्हें ही निशाना / अपने धनुष्य की
धूर्तविद्या का / और यों कट गए हाथ / पूरे समाज के
समाज-जिसके तुम अगवा / कर दिया पंगु भविष्य
तुम्हारी बिरादरी का । ” [56]

एकलव्य की गुरुमुक्ति के गुणगान के कोलाहल के द्वारा उसके साथ हुए अन्याय को छिपाया नहीं जा सकता । गुरु द्रोण कौन थे ? कितने ज्ञानी थे ? कितने महान थे ? इन प्रश्नों का उत्तर दलित साहित्य का वर्ण्य विषय कभी नहीं बन पाया, न तो उसने एकलव्य की गुरुभक्ति की भूरि-भूरि प्रसंशा ही की है । जिस गुरु की 'महानता' के सामने एकलव्य ने अपने अस्तित्व को दाँव पर लगा दिया उस गुरु की महत्ता तभी सिध्ध हो सकती है , जब उन्होंने अपनी नैतिकता का परिचय दिया हो । पूरे महाभारत में वे तो खुद बेबस, असहाय एवं लाचार दिखाई देते हैं । दलित कवि श्यामसिंह 'शशि' ने महाभारत में द्रोण के कर्तव्य एवं उनके कार्य कलापों को आँखों में तेल डालकर देखा है । उन्होंने एकलव्य से कहा है कि- तुम्हारे पास अँगूठे के रूप में तुम्हारे पौरुषत्व को माँगा गया तब तुम युधिष्ठिर और कौरवों की भाँति उन्हें मूर्ख बना सकते थे लेकिन- “ अश्वत्थामा हत : ” कहने का / गुण भी नहीं था तुम्हारे भीतर

टूटने पर भी तुमने / मैला नहीं होने दिया / अपने कंचन-मन को
सहलाते रहे उसे “ संन्तोष धन ”- सा / पर तुमने तो अपने गुरु के
शिष्यों से भी कुछ नहीं सीखा / जिन्होंने उन्हें बाँध दिया था
अपनी व्यूह रचना में / और लड़वाया था / अधर्म युध्ध
भोले-भाले पाण्डवों के साथ । ” [57]

इतना ही नहीं कवि ने द्रोण के चरित्र का वैज्ञानिक एवं यथार्थ परक विशलेषण किया है और एक गुरुदेव या महाज्ञानी ॠषि के कर्तव्यों से साक्षात्कार करवाया है । महाभारत के कथानक में गुरु द्रोण की क्या भूमिका होनी चाहिए थी ? इस बात का खुलासा करते हुए कवि आगे कहते हैं कि -

" ओह ! / कितना बीभत्स और घृणित पथ था / वह महाभारत का !
जिस पर चलते / लज्जा नहीं आयी / तुम्हारे गुरु द्रोण को
काश..! , वे तोड़ पाते कुटिल संकल्पों को / और मिल जाते पांण्डवो से
या खड़े हो जाते दोनों दलों के बीच / संधि के लिए अपना वध करवाते ।
तो दुनिया उन्हें वीर शहीद का पद देती / और तब तुम गर्वसे कहते -
" मेरा गुरु कितना महान था । " [58]

लेकिन द्रोण यह नहीं कर पाये और यही बात उनके प्रपंची स्वभाव का प्रमाण है । दलितों ने एकलव्य के उदाहरण से बहुत कुछ सीखा है , अब वह एकलव्य जैसी गलती नहीं करेगा क्योंकि द्रोण के असली रूप को वह जान चूका है । अब वह ऐसे किसी भी प्रपंच का शिकार नहीं बनेगा, जो उसके प्रगति पथ की बाधा हो । दलित कवियों ने एकलव्य के मिथक का सटीक प्रयोग किया है । इस मिथक के द्वारा उन्होंने अपने विरोध एवं विद्रोह के स्वर को बड़ी ही मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है । आज का शिक्षित एवं सजग दलित अंगूठा मांगनेवाले द्रोण से यही कहता है कि -

" अँघेरे की गहन गुफ़ा को / घाव सहने दो / जाओ द्रोण जाओ
दर्द को हरियाने दो / एकलव्य मैं पहले था / आज भी हूँ
अब जान गया हूँ / अंगूठा दान क्यों माँगते हो ? " [59]

दलित साहित्य ने इस प्रकार पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या की है और उन्हें नवीन संदर्भों में प्रयुक्त किया है । ऐसी नाविन्य भरी मिथक-योजना दलित साहित्यकी अपनी विशेषता मानी जानी चाहिए । अपनी अर्थाभिव्यक्ति के लिए दलित साहित्य ने पौराणिक मिथकों के साथ-साथ नए मिथकों का निर्माण भी किया है । समाज के शोषित वर्ग के विद्रोहीजन दलित साहित्य के नये मिथकों के रुप में उभरे हैं । अपने बलात्कारियों को खुद ही सजा देती वीरांगना फूलन इसी का एक उदाहरण है । डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर ने 'फूलन हमारा आदर्श है ' कविता में इस नवीन मिथक की अभिव्यंजना की है -

" फूलन / दलित शोषित समाज का / प्रतीक है
चाहे उसे , कितना भी बदनाम करो / तोहमत धरो
वह / हमारी ही नहीं / सारी नारी जाति की
शौर्यगाथा है / वह / गर्व से उन्नत / हमारा माथा है । " [60]

अगर नारी को अबला नहीं मानना चाहिए तो फूलन ही इसका ज्वलंत उदाहरण है। वह अपने प्रतिशोध के लिए पुरुषवर्ग या न्यायतंत्र पर निर्भर नहीं रहती, खुद अपने प्रतिशोध को परिणाम तक पहुँचाती है ।

इस प्रकार के कई नवीन मिथक दलित साहित्य में पाए जाते हैं । यह मिथक-नाविन्य दलित साहित्य की भाषा एवं अभिव्यक्ति दोनों को सबल बनाता है । दलित साहित्य की मिथक-योजना निश्चित रूप से विशिष्ट है इसलिए उसकी भाषा में भी विशिष्टता झलकती है। मिथकों ने दलित वेदना, संवेदना एवं संकल्पों को सफल अभिव्यकित दी है ।

6.6.4 दलित कविता की आलंकारिकता

दलित साहित्य की भाषा पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है , कि इस भाषा में अलंकार एवं विशेषण-विपर्ययों का अस्तित्व नहीं है , अतः काव्य सौंदर्य की दृष्टि से यह भाषा निम्न स्तर की है । उनकी दृष्टि से दलित साहित्य में अलंकारो की व्यंजना नहीं मिलती है, खास कर काव्य में तो अलंकारो की योजना होनी ही चाहिए । तथाकथित एवं अल्पज्ञानी सौंदर्यशास्त्री ऐसी बयानबाजी करते समय यह भूल जाते हैं कि भाषा में किलष्ट शब्दावली का दुरूह मकड़जाल बुनना, रमणीय कामनाओं का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करना ही सौंदर्य मात्र नहीं है, अलंकरण नहीं है, कविता का भाव बोध एवं यथार्थबोध भी एक तत्त्व है जो कविता को सच्चे अर्थों में सुन्दर बनाते हैं । यह सब बातें इस अध्याय में आगे हो ही चूकी है, अतः यहाँ उन अरोपों की विस्तृत चर्चा न करते हुए, उन अरोपों के प्रत्युत्तर में तथ्यात्मक जानकारियों को प्रस्तुत करने का उपक्रम रहेगा । हमारा अध्ययन काव्य साहित्य से

है अतः यहाँ हम दलित कविता से कुछ अलंकारों का उदाहारण पेश कर दलित काव्य साहित्य की भाषा को अनालंकरण के अरोप से मुक्त करने का विनम्र प्रयास करेंगे ।

दलित साहित्य के वर्ण्य विषय, सामाजिक जिम्मेदारियों एवं क्रांतदर्शी उदेश्यों को देखते हुए, इस साहित्य में अलंकार योजना की अपेक्षा रखना ही अनुचित जान पड़ता है, फिर भी हमने यहाँ दलित कविता में दृष्टव्य कतिपय अलंकारों का आकलन करने का यथामति प्रयास किया है ।

6.6.4.1 अनुप्रास अलंकार

शब्दालंकारों में अनुप्रास प्रमुख अलंकार माना जाता है, जो काव्य के भौतिक सौंदर्य में अभिवृधि करता है । अनुप्रास अलंकार से कविता में नाद-सौंदर्य आता है, जो कविता को ज्यादा भोग्य बनाता है । निश्चित रूप से ऐसे काव्यानंद के लिए दलित साहित्य में कोई स्थान नहीं है, फिर भी दलित कविता साहित्य की कुछ रचनाओं में अनुप्रास अलंकारो की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । जैसे-

" ओ वाल्मीकि ! /

सभ्य सुसंस्कृत सम्बोधन को / तुम / क्यों पसंद नहीं करते । " [61]

उपरोक्त द्वितीय पंक्ति में ' स ' की पुनरावृत्ति ने सिर्फ नाद-सौंदर्य ही नहीं बढ़ाया लेकिन उसके भाव-गांभीर्य को भी बढ़ाया है । उसी प्रकार कंवल भारतीजी की ये पंक्तियाँ देखिए -

" तुम्हारे लिए कोई मायने नही रखता / न नव वर्ष, न नयी सदी"

क्योंकि तुम अंगारा नहीं बन सकते । " [62]

यहाँ ' न ' की बारंबारिता है, तथा उसी कविता में आगे वे कहते हैं कि –

" तो संकल्प लें हम नई सदी के सूरज का स्वागत

एक कायर भीड़ के रुप में नहीं

प्रतिरोध की शक्ति जुटाकर . . . . . " [63]

उपरोक्त उदाहरणों में अनुप्रास अलंकार के दर्शन होते हैं । दलित कविता में अंत्यानुप्रास अलंकार प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है । अंत्यानुप्रास ने दलित कविताओं को वेधक बनाया है । इस उपक्रम में अदम गौंडवी की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य है

"आइए महसूस करिये जिंदगी के ताप को
मैं चमारों की गली तक ले चलूँगा आप को ।
जिस गली में भुखमरी की यातना से उबकर
मर गई फुलिया बिचारी कल कुएँ में डूबकर ।" 64

इन पंक्तियो में कविने अंत्यानुप्रास के चमत्कार के द्वारा दलितों के परिवेश को हुबहू चित्रित करने में सफलता हासिल की है । यहाँ अंत्यानुप्रास के कारण उत्पन्न हुई लयबध्धता का एहसास भी किया जा सकता है । कवि मंसाराम विद्रोही ने अपनी रचना में दलित नारी के कष्टकर यथार्थ को अंत्यानुप्रास की सुन्दर व्यंजना के साथ उकेरा है- " सखी री ढो तू गारा ईंट ।

बनिया , बामन की री बेटी , ढोई कहीं क्या ईंट ?
खन्ती खोदती मिलैं कहीं क्या , पहिनि किनारी छींट ।
हो मजदूरन क्षत्रि की बेटी , तनय चीथड़ा चीट ।
करूँ गुलामी सखी तुम्हारी , मुझको देना पीट ।" 65

दलित नारी अपनी तुलना सवर्ण नारी से कैसे कर सकती है ? मजदूरी एवं मजबूरी ही उसकी नियति हैं । दलित समाज की बेबसी एवं अस्मिता विहीन दुर्दशा का चित्रण अनेक दलित कवियों ने किया है । दलित कवि कालीचरण ' स्नेही' ने अपनी कविता ' आरक्षण अपना अपना ' में दलित जीवन के यथार्थ को अनुप्रास के साथ प्रस्तुत किया है ।

" मुर्दे जलाइए , झाडू लगाइए , सूअर चराइए , बच्चे जनाइए
टोकरी बनाइए , दादरे गाइए , जूते बनाइए
पशु चराइए , मृत पशु उठाइए , बाजरे की रोटी खाइए " 66

स्नेहीजी की इन पंक्तियों में दलित जीवन का वर्णन हुआ है। पंक्तियों की प्रासानुकूलता वर्णन को अधिक चमत्कृत कर देती है । दलितों के ऐसे दमनकारी जीवनचक्र के सामने द्विज वर्ग के दोहरे मोहरोंवाले जीवन को कवि श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी अनोखी अदा में अनुप्रासबध्ध किया है-

" लोग मिले उजले कपड़ों में / मन के काले लोग मिले ।
मरज मुफलिसी को फैलाते / पैसेवाले लोग मिले ।
नाम पै मन्दिर और मस्जिद के / खाते चन्दा लोग मिले । "

* * * * * * * * * * * * * * * *

" मेरा कमेरा भूखा प्यासा, उसकी पूछें बात नहीं ।
यहाँ उसूलों के पक्के की , दो कोडी औकात नहीं ।।
नगर सेठ की मृत कुतिया को देते कंधा लोग मिले
छिप-छिप कर बेईमानी का करते धंधा लोग मिले । " 67

उपरोक्त पंक्तियों के द्वारा कविने न सिर्फ अनुप्रास का उत्कृष्ट उदाहरण दिया है, बल्कि दलित कविता पर लगे गद्यात्मकता के कलंक को भी धो दिया है। भारतीय समाजव्यवस्था में दलितों को सबसे नीचा स्थान दिया गया है और उनको अधिकारपूर्वक शोषित एवं प्रताड़ित किया गया है । भारतीय समाज की इस कटु वास्तविकता को कवि सुखवीर सिंह ने प्रासात्मक एवं व्यंग्यात्मक ढंग से पेश किया है

" ओ मेरे गाँव ! / मैनें किसी भी स्कूल में नहीं पढ़ा
यह सबक / या रटा ऐसा पहाड़ा / कि इकाई की सुख-सुविधा के लिए
पिसतात है इस देश में सैकड़ा-दहाड़ा ।

* * * * * * * * * * * * * * * *

यहाँ न वर्तमान सत्य है / न सच है , भविष्य
जो कुछ है , सिर्फ भूत है / इस लिए आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा
आज भी एकदम अछूत है । " 68

उपरोक्त पक्तियों में दलितों के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक शोषण को बड़े ही कातर ढंग से पेश किया गया है । अंत्यानुप्रास के चमत्कार से यह वर्णन

जीवंत हो उठा है । प्राचीन काल से दलित एवं पीड़ित दलितों में शिक्षा के प्रसार ने एक मुक्ति चेतना को जागृत किया है । आज का दलित अत्याचार का मूक-मोक्ता नहीं बनता बल्कि उसके सामने आव़ाज उठाता है, विद्रोह करता है । उसे अपने अधिकारों का जागृत भान हो चूका है । शिक्षा के प्रसार से दलित महिलाओं के जीवन में भी बदलाव आया है, अब वह चूपचाप अत्याचार सहनेवाली विवश स्त्री नहीं रही । इसी बात को कवि श्यौराज सिंह बेचैन ने अनुप्रास के साथ शब्दबध्ध किया है -

" अक्षर के जादू ने- / उस पर असर बड़ा बेजोड़ किया
चुप्पा रहना छोड़ / दिया , लड़की ने डरना छोड़ दिया । " 69

कवि सूरजपाल चौहान की अभिव्यक्ति उन्हें एक नयी पहचान दिलाने का कारण बनी है । उनकी व्यंग्यात्मकता बहुत पैनी है , वे व्यंग्यात्मकता एवं प्रासबध्धता का उत्तम उदाहरण देते हैं -

" कर्महीन पण्डित पुजते हैं / उनका होता आदर मान
पढ़े-लिखे विद्वान भले हों / शूद्रों का होता अपमान
वाह रे ! वाह मेरे हिंदुस्तान । " 70

आज देश के परिवेश में धर्म-जाति-संप्रदाय के झगड़े देश की समरसता, शांति, एकता और प्रेमपूर्ण वातावरण की बलि ले रहे हैं। उस पर भी राजनेता ऐसे मतभदों को उकेरकर अपने निजी स्वार्थों को सिध्ध करने की हीन कोशिश कर रहे हैं । समाज में विसंगतताओं का ही राज है, जिसकी लाठी उसकी भैंस की उक्ति को चरितार्थ करते न्यायतंत्र पर से आम आदमी भरोसा खो बैठा है । ऐसी अँधाधूँधी भरी समाज व्यवस्था को कवि डॉ. कुसुम 'वियोगी' ने लयात्मक एवं प्रासबध्ध तरीके से उकेरा है-

" नेता सारे लुभा रहे हैं , सत्य अहिंसा की बोली से ।
जाति-धर्म-भाषा के बल पर खेल खून की होली से ।
अधिकारों की लड़ें लड़ाई , दफ़न करे वे गोली से ।
दहेज़-दरिन्दे जला रहे जो दुल्हन उतरी डोली से ।

हुआ न्याय का आसन डग-मग , हुई धर्म से हीन धरा ।

देख व्यवस्था राज-काज की आम आदमी डरा-डरा । ” [71]

दलित साहित्य ने यह सिध्ध कर दिया है कि वह सिर्फ वेदनाओं और दुखों का रोना-धोना नहीं है , उसकी सामाजिक चेतना भी विस्तृत है । देश के उपरोक्त माहौल को चित्रित करके दलित कविता ने अपने सामाजिक कर्तव्य की इतिश्री नहीं की है , उसकी सामाजिक चेतना ने मुक्त कंठ पाया है । दलित साहित्य यही चाहता है कि - “ जन-जन में हो भाईचारा /एक देश है , हो एक नारा ।।

धन-धरती का हो बंटवारा ।। ” [72]

इस प्रकार दलित कविता की सामाजिक चेतना को अनदेखा नहीं किया जा सकता । दलित कविता की अनुप्रासता उसकी इस व्यापक चेतना की वाहक बनी हुई है ।

6.6.4.2 रूपक अलंकार

दलित साहित्य में शब्दालंकार की भाँति अर्थालंकार युक्त कविताओं की मौजूदगी भी पायी जाती है । दलितों ने अपनी व्यथा-कथा को कहने लिए अनेक उपमेय-उपमानों का सटीक प्रयोग किया है । हम जानते हैं कि रूप-गुण की समानता के कारण उपमेय में ही उपमान का अभेद आरोपण करने से रूपक अलंकार की व्यंजना बनती है । दलित कविता ऐसे अनेक उदाहरणों से भरी पड़ी है जहाँ हमें रूपक अलंकार की सार्थक योजना दिखाई पड़ती है -

“ तुम्हारे पास हमारे पास / सिर्फ एक चीज है

ईमान का झंडा है / बुध्धि का बल्लम है / अभय की गैंती है

ह्रदय की तगारी तसला है / नये -नये बनाने के लिए भवन

आत्मा के मनुष्य के । ” [73]

दलित कविता की उपरोक्त पंक्तियों में कवि की रूपक योजना ध्यानाकर्षक है । बल्लम , गैंती , झंडा , तगारे-तसले आदि के द्वारा दलितों की कई सारी अनकही एवं अनसुनी वेदनाओं को वाचा देने का प्रयास किया गया है । भारतीय समाज के

मानसपट पर जातीय संकीर्णता ने प्रभुत्व जमा लिया है , इसलिए मानवता के उच्च आदर्शों के नैतिक मूल्य एवं जीवन मूल्य डगमगाने लगे हैं । लोग ऐसे मानवीय मूल्यों की अपेक्षा जातिगत परंपराओं को अधिक महत्व देते हुए दिखाई देते हैं । भारतीय समाज धर्म-संप्रदाय, जाति , उपजाति आदि अनेकानेक आधारों पर विभिन्न श्रेणियों में बँट चूका है । जाति एवं संप्रदाय में आपस में भी प्रतिस्पर्धा लगी रहती है , ईर्ष्या लगी रहती है । मानव मानव न रहकर पशुओं की भाँति आपस में लड़ रहा है । भारतीय संस्कृति पर रुपकात्मक व्यंग्य करते हुए डॉ. सुखवीर सिंह लिखते हैं कि -

" यहाँ साँस लेती है वह कुत्ता संस्कृति
जो आदमी को आदमी से काटती-बाँटती है
धन-धरती और रिश्तों को
गैर-बराबर के साथ भौंकती है अपनी ही नस्ल पर
और दूसरों की नस्लों के तलुए चाटती है । " [74]

कहना न होगा कि यहाँ कुत्ता संस्कृति का रूपक चमत्कारिक प्रभाव छोड़ता है । संस्कृति का मनघडंत अर्थघटन कर दलित दमन के इतिहास लिखनेवाला समाज पशु से कम नहीं है और ऐसे समाज के लिए कुत्ता-संस्कृति का रूपक उचित ही जान पड़ता है । डॉ. सुखवीर सिंह की भाषा में विशिष्ट प्रकार की आलंकारिकता पायी जाती है । स्वातंत्र्योत्तर काल में भी दलितों के साथ हो रहे अन्याय एवं अत्याचार को देखकर वे अन्योक्ति उपमाएँ , रूपक , अलंकार के माध्यम से प्रश्न करते हैं कि-

" हवा में फिर से / प्रश्न उछल रहे हैं / गरीबों की बहुसंख्या पर
थोड़े-से सुबिधा भोगी साँप क्यूँ पल रहे हैं ? " [75]

रूपक अलंकार की अनोखी छटा दिखाती हुई उपरोक्त पंक्तियों के द्वारा कवि ने समाज को आईना दिखाया है । दलित कवयित्री सुशीला टांकभौरे ने दलित कविता के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है । दलित दामिनी की करुण कथा को उन्होंने शब्दाभिव्यक्ति दी है । दलित स्त्रियों के शोषण का सजीव चित्रण करके उसे अपने विद्रोह का माध्यम बनानेवाली सुशीलाजी की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

" मगर अब हैरान है / क्षण भर में क्या हुआ ? / उष्मा से गरमाया
मन का शीशमहल / चूर-चूर हो गया / पानी की सिर्फ एक ठंडी बूंद से
मन का कनक / गहराई तक बिंध गया / तेजाब की गर्म बूंदों से

* * * * * * * * * * * * * *

चंदन वन की शाख / महियारे चूल्हे में जलती रही /
नारी होने की परीक्षा / वह / हर पल देती रही / अपेक्षा की ठंडक और /
आक्रोश के तेजाब से / नारी व्यक्तित्व को / हंमेशा रौंदा जाता है । " [76]

नारी प्रताड़न एवं नारी जिजीविषा को प्रस्तुत करती उपरोक्त पंक्तियों में रूपक अलंकार की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है । लगातार अभावों एवं कमियों का जीवन जीने के कारण दलितों के मन में एक गुस्सा, मोहभंग जैसी असंतोषकारी प्रवृतियों का प्रादुर्भाव हो जाता है , वह उनकी दारिद्र्यजन्य विवशताएँ ही हैं जो उनको समाज के खिलाफ़ खड़ा कर देती हैं । निम्नलिखित पंक्तियों में कवि वाल्मीकिजी ने इसी विद्रोह की आहट सुनी है-

" यहाँ पीढ़ी ने अपने सीने पर / खोद लिया है संघर्ष ।
जहाँ आंसुओं का सैलाब नहीं / विद्रोह की चिनगारी फूटेगी ।
जलती झोंपडी से उठते धुएँ में / तनी मुट्ठियां / तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास रचेंगी । " [77]

यहाँ रूपकों के माध्यम से कविने विद्रोह की सुगबुगाहट को प्रस्तुत कर दिया है । दलित रचनाकार अपनी रचनामें अपने जीवन की कहानी ही लिखता है । वह अपने सपने , अपनी पीड़ा , अपनी मजबूरी , अपनी तड़पन को अपनी रचनाओं के माध्यम से संप्रेषित करता है । कवि सुखवीर सिंह ने अपने गाँव की स्मृतियों की तीव्रता को अनोखे एवं नये रूपकों के माध्यम से चित्रित किया है -

" एक गाँव है / जो मेरे कन्धे पर बैठा है / गिद्ध की तरह
बार-बार अपने नूकीले पंजों से / कन्धों को दबाता है

सुदूर पीछे की और उड़ा ले जाता है / चोंच से मार-मार
फाड़ देता है समय की परत / बीचोंबीच जिसके
एक पेड़ खड़ा पाता है। " [78]

यहाँ कविने अपनी स्मृतियों के साथ उस भयानक भूतकाल का भी वर्णन किया है , जो सिर्फ उसने नहीं , बल्कि उसकी पूरी जाति ने भोगा है । गिद्ध के नुकीले पंजे वही वेदना को सूचित करते हैं। वही वेदना, वही पीड़ा उनको बार-बार अपने खोये हुए वजूद का अहसास करवाती रहती है। दलितों की वेदना को रूपकों के द्वारा प्रभावी अभिव्यक्ति मिली है इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता।

6.6.4.3 उपमा अलंकार

रूपकों की भाँति दलित काव्य साहित्य में उपमा अलंकार की भी व्यापक अभिव्यंजनाएँ देखी जा सकती है। दलित साहित्यकारों ने अपनी आपबीती कहने के लिए अनेक उपमानों-उपमेयों एवं उपमाओं का प्रयोग किया है और इसके द्वारा अपनी काव्य भाषा को समृद्ध किया है । दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भद्र समाज की बर्बरता को समकालीन संदर्भों में उभारा है -

" लहू में बसा हुआ / बर्बर संस्कृति का भय
बुना हुआ मकड़ी के <u>जाले-सा</u> / इर्द-गिर्द
महीन अद्रश्य <u>धागों-से</u> / हौंसला टूट रहा है। " [79]

तथाकथित महान संस्कृतिजनीत धार्मिक एवं जातिगत संकीर्णताओं के बंधन से आज का समाज भी मुक्त नहीं हो पा रहा है । प्राचीन 'धार्मिक बर्बरताओं' को अपनी आँखों से देखनेवाले लोगों के मन में उस 'महान' संस्कृति के सांस्कृतिक बंधनों का डर समाया हुआ है । कवि ने इस बंधनों को 'मकड़ी के जाले-सा' बताया है, जिसमें फँस जाने के बाद मुक्त होना असंभव हैं। भारतीय धार्मिक संस्कृति के इस मकड़-जाल में फँसे दलित की दशा का वर्णन करते हुए डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने अपनी कविता 'अस्पृश्य में अस्पृश्य' में विविध उपमाओं का सार्थक प्रयोग किया है।

" ...परन्तु उसकी झुग्गी झोपडी तक / कर दी है गाँव के बाहर
अन्त्योदय के नाम पर / तमाचे-सा / सवाल जड़ता रहा है /
वह / हमारे गाल पर / सुनहरे काले तन पर / बासी रोटी की शक्ल लेकर
वह / खटिया के टूटे पाये-सा /एक कोने में पड़ा रहा है / सदियों से । " [80]

दलित की अवदशा एवं अपमान, समानता एवं विकास की डींगे हाँकनेवालों के गाल पर तमाचे-सी है । लेकिन दु:खद सत्य यह है कि ऐसे तमाचों से उभरनेवाली रक्ताभ लालिमा भी अपना प्रभाव नहीं दिखाती ।

दलित साहित्य आत्मकथात्मक साहित्य माना जाता है । इसमें वर्ण्य संवेदनाओं के केन्द्र में होता है रचयिता खुद , वह अपनी बातों को , अपनों के लिए, अपनी भाषा में लिखता है । सुखवीर सिंह की लंबी कविता 'बयान बहार' में कविने अपने बचपन के दिनों की यादें ताज़ा की है, जिसमें उपमा अलंकार की सुंदर निष्पत्ति हुई है ।- " तब मानो पूरी बादशाहत का सुख दे जाता था

कोरी स्लेट-सा दिन

* * * * * * * * * * * * * * *

ओ मेरे गाँव ! / जाड़े के दिनों में
हल्की मुलायम-सी पीली-पीली धूप के नीचे / किसी दीवार से पीठ टिका
गन्ने चूसने का स्वाद / अभी भी मुँह में घुल-घुल जाता है । " [81]

बचपन की यादें मन में भुनाते-भुनाते कवि नवीन उपमाओं का सर्जन करता चलता है , जो उसकी भाषा को ही नहीं बल्कि अभिव्यक्ति को भी बोधगम्य बनाती है । इसी क्रम में दलित कवयित्री सुशीला टांकभौरे की पंक्तियाँ भी देखने योग्य है । नारी की सामाजिक परिभाषा को स्पष्ट करते हुए सुशीलाजी ने उपमा की सुंदर योजना भी कर दी है -

" पारखी ! / क्या कहते हो / वह कुछ भी नहीं ?
सिर्फ वही / जो तुम्हारा निर्णय है / कच्चे काँच के ढेर-सी
टूटती बिखरती अबला / बस !!! " [82]

यह बात तो सर्वविदित है कि धर्मांध भारतीय समाज ने अपने एक बहुत बड़े हिस्से को सदियों से प्रताड़ित किया है और वह भी अवैज्ञानिक, अतार्किक एवं झूठी वर्ण-व्यवस्था के नाम पर । कदम-कदम पर दलित वर्ग को आगे बढ़ने से, ऊपर उठने से रोका गया । उसे अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं का सामना करना पड़ा । अतः ऐसे माहौल से या ऐसी जाति से पैदा हुआ साहित्यकार इस दंभी समाज के प्रति ज़रूर विद्रोह करेगा और करना भी चाहिए । इसलिए दलित साहित्य ने ऐसी संकुचित विचारधारावाले भारतीय समाज को आड़े हाथों लिया है और उसे दलितों का हत्यारा करार दिया है -

"हत्यारे के चहेरे पर / सलमान खान-सी मासूमियत है
बिग-बी की पकी दाढ़ी-सा अनुभव लिए / हत्यारा एक साथ बच्चों के स्कूलों
जागरण-मंचों / और नए हथियारों के ज़खीरे का
उदघाटन करता है ।" [83]

यहाँ समाज का मानवीकरण करके उसके बहुरुपिया स्वरुप का परिचय देने का प्रयास किया गया है । कवि के इस प्रयास में सलमान एवं बिग-बी की उपमाओं ने पंक्तियों के भाव-पक्ष को मारक बना दिया है । दलित काव्य साहित्य में ऐसी अनेक नवीन एवं समकालीन उपमाओं की योजना दिखाई देती है ।

6.6.4.4 श्लेष एवं यमक अलंकार

दलित काव्य साहित्य की भाषा अपने आप में आलंकारिकता का गुण समाए हुए है । उसमें अनेक प्रकार के शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों की योजना मिलती है । दलित साहित्य में प्रमुख रूप से कविता साहित्य में सौंदर्य मूलक तत्वों की विद्यमानता तथाकथित अल्पज्ञ आलोचकों को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए सक्षम है । दलित कविता में व्याप्त अलंकारों की परिचर्चा में हम आगे श्लेष एवं यमक अलंकार के कुछ उदाहरण देना चाहेंगे ।

समकालीन कवि अशोक भारती की भाषा बहुत पैनी है, वे समाज की दुःखती नस पर हाथ ही नहीं रखते बल्कि उसे उखाड़ फेंकने का जोश भी भरते हैं -

"गाँव दर गाँव ढोर चरानेवाले / तिलों को पेलकर, तेल बनानेवाले,
काश : तूने उन 'तिलों' को पेला होता / जो तुझे तिल-तिल गलाते हैं ।" [84]

यहाँ पर श्लेष एवं यमक अलंकार का सुभग समन्वय देखने को मिलता है । इन पंक्तियों में जहाँ 'तिल' शब्द की पुनरावृत्ति यमक का स्वरुप दिखाती है , वहीं "काश ! तूने उन 'तिलों' को पेला होता" का 'तिल' अनेक संदर्भों में प्रयुक्त हुआ है । वह दलित जीवन की चुनौतियाँ भी हो सकता है, तो दलित-शोषकों का प्रतीक बनकर भी उभरा है। श्लेष अलंकार की यह अनोखी छटा यहाँ देखने को मिलती है । भारतीय समाज में दलितों को अनेक प्रकार कि निर्योग्यताओं के संकीर्ण पिंजड़े में बंद करके उसके पंख को और उड़ान को अवरुध्ध किया गया है । वह इस चौखटे में भी अपनी उड़ान नहीं भूला है और इसी उड़ान की कोशिश में अपने पंख खो बैठा है । समाज में विशेषकर ब्राह्मणवादियों ने जाति-पाँति के भेद-भाव को हमेशा बनाए रखने की कोशिश की है । दलित कवि मलखान सिंह ने अपनी कविता 'सुनो ब्राह्मण' में ऐसे लोगों की अच्छी खबर ली है । यहाँ इस कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं –

"जिस दिन कि तुमने / न्याय के नाम पर / जीवन को चौखटों में कस
कसाई बाड़ा बना दिया था । / और खुद को शीर्ष पर / स्थापित करने हेतु
ताले ठुकवा दिये थे / चौमंजिला जीने से ।" [85]

उपरोक्त पंक्तियों में 'चौमंजिला जीना' समाज की चार वर्णीय जाति व्यवस्था को सूचित करता है । यही वर्ण व्यवस्था के कारण दलितों को अनेकानेक यातनाओं का सामना करना पड़ा था, भोगना पड़ा था । उपरोक्त पंक्तियों में झलकता आक्रोश उसी दर्दनाक जख्मों का प्रतिफलन है । यही आक्रोश दलित समाज की संघर्ष चेतना की चिनगारी है । दलित साहित्य दलितों को उनके साथ हो रहे अन्याय से रुबरु करवाता है और इस परावलंबिता को त्यागकर अपने बलबूते पर अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष एवं विद्रोह के लिए जागृत करता है । दलित कविता दलितों को आह्वान करती है कि –

"तुम शेर बनो । / भेड़, बकरियाँ बने रहे तो / शेर तुम्हे खा जाएगा ।" 86

उपरोक्त पंक्तियों में एक ओर तो यमक अलंकार की योजना स्पष्ट हो रही है, तो दूसरी और हर पंक्ति में आया 'शेर' श्लेष के रूप में भी देखा जा सकता है । प्रथम पंक्ति में आया हुआ 'शेर' दलितों को वीर, साहसी एवं आक्रामक बनाने का प्रतीक है वहीँ अंतिम पंक्ति का 'शेर' शोषक समाज का प्रतीक बना हुआ है । कुछ भी हो इन पंक्तियों के द्वारा सुंदर अलंकारों की अनुभूति होती है, जो दलित कविता के भाषा सौंदर्य पर लगे असौन्दर्यत्मकता के कलंक को मिटा देती हैं , इस बात से हम इनकार नहीं कर सकते ।

दलित काव्य भाषा अपनी आलंकारिकता के द्वारा आलोचकों पर तीखा प्रहार करती नज़र आ रही है । दलित कविता की अपनी एक अलग एवं विशिष्ट भाषा है, जो प्रसिद्ध काव्य सौंदर्यात्मक तत्वों को अपने परिवेशानुकूल प्रस्तुत करती है । कवि श्योराजसिहं बेचैन दलित समाज के दलन के कारणों की छान-बीन करते हैं -

" लाशें हुई जिन्दगी /ढो रहे हैं करोड़ों लोग
मुट्ठी भर हैं, जो "जग" / नरक बनाते हैं ।" 87

यहाँ करोड़ों लोगों पर अत्याचार करनेवाले मुट्ठीभर लोगों की बात है । यहाँ 'जग' संसार के रूप में भी देखा जा सकता है और 'जगना' यहाँ पर 'चतुराई से' काम लेना' के संदर्भ में भी देखा जा सकता है । कविने 'जग' शब्द में कई संदर्भों का सफल आरोपण कर दिया है, जिसे हम श्लेष अलंकार की एक झलक के रूप में भी देख सकते हैं । दलित दुर्गति के सफल चित्रांकन में दलित कविता की भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित दुर्दशा के क्रम को कुछ इस प्रकार पद्य बध्ध किया है -

"जिसमें छोटे-छोटे बच्चों का / अनवरत सिलसिला है /
जिन्हें लील जाती है / गन्दगी से उठती दुर्गंध / और वे न जाने कब बड़े होकर
गन्दगी के इस शहर में दुर्गंध बन जाते हैं ।" 88

उपरोक्त पंक्तियों में 'गन्दगी' एवं 'दुर्गंध' शब्द की अर्थ वैविध्य के साथ पुनरावृत्ति हुई है, जो यमक अलंकार की व्यंजना को स्पष्ट करती है । चौथी पंक्ति में आए 'गन्दगी' एवं 'दुर्गंध' कूड़े करकट एवं बदबूदार माहौल को सजीव करते हैं । जबकि अंतिम पंक्ति में यही शब्द क्रमानुसार समाज की सड़ी-गली विचारधारा एवं दुर्गंध की भाँति तिरस्कार एवं उपेक्षा के परिचायक बन पड़े हैं । गंदगी और बदबूदार माहौल में पले-बढ़े दलित बच्चे बड़े बनकर इस अमानवीय समाज की उपेक्षा के पात्र बन जाते हैं - यही बात कविने अलंकार के सुंदर प्रयोग के द्वारा स्पष्ट की है ।

सारांशतः हम कह सकते हैं कि दलित काव्यभाषा की अपनी विशिष्ट आलंकारिकता है जो पारंपरिक अलंकार योजना के समान ही कविता के भाव पक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष दोनों पर अपना प्रभाव छोड़ जाती है ।

6.6.5 दलित कविता में शब्द चमत्कृति

दलित कविता का सौंदर्य उसकी वेधकता में है । वह पाठक पर मर्मान्तक प्रहार करती है । भारतीय समाज के मर्म स्थानों पर प्रहार करके उसकी अमानवीयता को बेनकाब करना और दलितों को उन पर हो रहे अत्याचारों का एहसास करवा कर उनमें विद्रोह की ज्वाला को प्रज्वलित करने का काम दलित कविता ने बखूबी किया है और इसके यह भगीरथ कार्य में उसके सहयोगी बने हैं 'शब्द' । जी हाँ, शब्दों के विशिष्ट अर्थों में प्रयोग दलित कविता का एक अनोखा सौंदर्य है । शब्दों की मोहकता एवं मारकता दोनों का पूरा-पूरा प्रयोग दलित कविता ने किया है । दलित काव्य-भाषा का अध्ययन दलित काव्य की शब्द चमत्कृति के वर्णन के बिना अधूरा ही रह जाएगा, अतः यहाँ हम कुछ उदाहरणों के द्वारा दलित काव्य की शब्द शक्ति का आकलन करने का प्रयास करेंगे ।

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने दलित समाज के दलन के लिए कारणभूत धर्म और उनके ठेकेदारों को अच्छे से लताड़ा है -

"धर्म एक ढकोसला है / ईश्वर झूठ / जो तथाकथित धर्मगुरुओं के कंधो पर बैठकर / आदमी को नकारता है / "यह कैसा धर्म है / जो करता है / आदमी से आदमी को अलग / शंकराचार्य / तुम ठीक कहते हो / मंदिर में आने का अधिकार / आदमी को नहीं होता।" [89]

यहाँ कविने 'आदमी' शब्द का सटीक संदर्भों में प्रयोग किया है, जो मानवता का प्रतीक है। 'आदमी' शब्द का व्यंग्यात्मक प्रयोग काव्य को चमत्कृति देता है, साथ ही साथ धर्म का अमानवीय रूप भी पेश कर देता है। अभिजात समुदाय ने धर्म एवं धर्माडंबरों की दुहाई दे-देकर दलितों को चूसने में कोई कमी नही रखी है। धर्म को ढाल बनाकर वे दलितों पर मनमाने अत्याचार करते आए हैं। इसिलिए ऐसा अमानवीय एवं अत्याचारी धर्म दलितों का शत्रु बना हुआ है। इसी क्रम में दलित कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं, जो धर्म को आधुनिक राष्ट्र चेतना के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करती है -

"यह तो पहले ही जग जाहिर था / कि क्रान्ति के पथ में खड़ी /
सबसे कठोर दीवारें हैं - जातियाँ / जिन पर यह समाज शासन करता है
और जिस शासन के प्रणेता हैं / यहाँ के बिस्वेदार और धनाढ्य /
जो न जाने कब से इस राष्ट्र की / कमर पर अपने खखारों की /
बरसात को कभी 'मुख्यधारा' / तो कभी 'धर्म' कहते आए हैं।" [90]

आधुनिक भारतीय समाज में और राजनीति में पूंजिपतियों के प्रभाव को चित्रित करते हुए धर्म के आधुनिकीकरण की बात भी यहाँ 'धर्म' के शब्द चमत्कार से प्रस्तुत कर दी गई है। आज के समाज में शोषण ही धर्म बना हुआ है और यही धर्म फ़ेशन भी। धर्म का आधुनिक संदर्भों में आकलन उपरोक्त पंक्तियों की अनोखी विशेषता है। धर्म के मनगढ़ंत आदेशों एवं झूठे इतिहास की आड़ में समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को कूचला गया है, उसकी अस्मिता को नष्ट करने का घृणित प्रयास किया गया है, लेकिन आज का दलित सजग एवं सतर्क बन गया है। वह इन सब

षडयंत्रों को भाँपने लगा है, जिन गौरवशाली अतीत की दुहाईयाँ दी जाती रही हैं, वह अमानवीय एवं अत्याचारी अतीत को दलित ने ठुकराया है और ऐसी परंपराओं के सामने सीना तानकर खड़ा हो गया है। उसके लिए अतीत एवं आधुनिक सामाजिक परिवेश में कोई अंतर नहीं आया है, केवल दमन और शोषण के तरीके बदल गए हैं । कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस शुतुरमुर्गी स्वभाव का पर्दाफाश किया है -

"अतीत को सदैव श्रेष्ठ गिना गया / आज नदियों में / घी- दूध नहीं
द्वेष- घृणा का रक्तिम - जल बह रहा है / झूठे इतिहास में
निचुड़े उदास चहेरेवाला / खो गया है ।" 91

उपरोक्त पंक्तियों में घी-दूध एवं द्वेष-घृणा जैसे शब्दों के द्वारा बिलकुल विपरीत संदर्भों को स्पष्ट किया गया है । घी- दूध समृध्धि का प्रतीक है और आज भारतीय समाज में हर व्यक्ति द्वेष-घृणा की संपत्ति का मालिक है । निम्न वर्ग के प्रति घृणा, तिरस्कार की अमर्याद 'संपत्ति' से आज का समाज 'समृद्ध' बना हुआ है । निश्चित रूप से सटीक भावों के लिए, सटीक शब्दावली ने इन पंक्तियों को मार्मिक बना दी है । कवि वाल्मीकि ने अपनी साहित्यिक एवं सामाजिक जिम्मेदारियों को लोकभोग्य बनाया है । उनका रचनाकर्म शोषितों में अधिकार प्राप्ति की छटपटाहट को तेज़ बनाता है । कविने अपने दायित्व का निर्वाह भली-भाँति किया है -

"लगता है / मेरे जिस्म का रक्त धीरे-धीरे / उतरकर / इन कविताओं में
बरस रहा है मूक भीड़ पर / हरियाली के इंतज़ार में ! / मित्रों /
मैं वह ऋण उतार देना चाहता हूँ / जो मैंने लिया था / उन सबसे ।" 92

कवि का कर्तव्य यहाँ मुक्ति के लिए क्रान्ति का आह्वान करना है । अपने खून भरे अनुभवों को शब्दबध्ध करके वह 'मूक भीड़' को जागृत करना चाहते हैं एवं क्रान्ति की 'हरियाली' का निर्माण करना चाहते हैं । समाज में शिक्षित एवं साहित्यिक बनकर यदि अपने वर्ग के सर्वहारा लोगों में क्रान्ति-बीज नहीं बोये तो समाज का ऋण कैसे उतरेगा । इस प्रकार कविने यहाँ विशिष्ट शब्दों के द्वारा विशिष्ट

भावों को अभिव्यक्त किया है । सचमुच शब्द चमत्कृति ने दलित कविता के अभिव्यक्ति पक्ष को सच्चे अर्थों में सार्थक बनाया है । यह बात दलित कविता की विशेषता मानी जानी चाहिए । दलितों के लिए महात्मा गाँधीजी ने 'हरिजन' शब्द का प्रचलन किया । हरिजन हरि के जन अर्थात् भगवान के लोग होते हैं, यही आशय इस शब्द के पीछे था। लेकिन कालांतर में यह शब्द भी अपने अर्थ सौंदर्य से तिरोहित हो गया और अपमान, तिरस्कार का सूचक बन गया। कवि मलखान सिंह ने 'हरिजन' शब्द की विशिष्ट एवं सटीक व्यंजना की है । उन्होंने 'हरि' और 'जन' इन दो शब्दों के माध्यम से दलित और सवर्ण समाज के अंतर को बखूबी पद्यबध्ध किया है -

> "यदि कोई प्यासा जन / भूल या मजबूरी बस / हरि कुएँ की जगत पर
> पाँव भी रख दे / तो कुएँ का पानी / मूत में बदल जाता है ।
> हमारे गाँव में / जो जन होते हैं / वह जूता बनाते हैं / कपड़ा बुनते हैं
> मैला उठाते हैं / जो हरि होते हैं / जूता पहनते हैं / कपड़ा पहनते हैं
> शास्त्र बाँचते हैं / हमारे गाँव में नम्रता / जन की खास पहचान है
> और उदण्डता हरि का बाँकपन ।" 93

इस प्रकार दलित साहित्य विशिष्ट शब्दों की विशिष्ट व्यंजनाओं से और प्रभावी बनता है । दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित साहित्य की शब्द शक्ति के विषय में कहा है कि - "शब्द की मारक शक्ति से दलित अच्छी तरह परिचित हो चूका है । उसने 'शब्द' के अर्थ को जान लिया है ।" 94

दलित अब यह जान चूका है कि धर्मशास्त्रों के पन्नों पर लिखे हुए शब्द ही उसकी दुर्गति के कारण हैं । उसी की आड़ में उनको पशुवत् जीवन के लिए बाध्य किया गया एवं उनका जीवन अभावों के गह्वर अँधेरे का शिकार बन गया । कवि मोहनदास नैमिशराय ने अपनी पंक्तियों में 'शब्द' का बहुत ही प्रभावी एवं प्रतीकात्मक प्रयोग किया है जो दलितों की वेदना को वाचा देने के साथ साथ विद्रोह का आगाज़ भी करता है -

"शब्द ही तो थे / जो मनुस्मृति में लिखे गए / राम राज चला गया
पर शम्बूक की चीख अभी बाकी है / जैसे दलितों की पीठ पर
चोट के निशान / शब्द सिसकते नहीं बोलते हैं / चोट करते हैं
जैसे दलित से हरिजन / और हरिजन से दलित।" [95]

इन उदाहरणों के आधार पर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि विशिष्ट शब्दावली के विशिष्ट प्रयोग ने दलित काव्य-भाषा को सबल एवं समृध्ध बनाया है। दलित कविता के इन भाषिक तत्वों के अध्ययन के बाद यह प्रमाणित होता है कि दलित कविता का शिल्प-विधान सौंदर्यमूलक तत्वों से भरपूर है, और इसमें पारंपरिक, आधुनिक एवं नवीन तीनों प्रकार के सौंदर्यात्मक तत्वों की अभिव्यंजना प्राप्त होती है।

6.7 दलित कविता में प्रश्न पूछने की वृत्ति

दलित साहित्य का जन्म वेदना, अभाव, बेबसी एवं विद्रोह की भावना से हुआ है। वह समाज में जहाँ भी कुछ असमानता देखता है, अमानवीय व्यवहार देखता है वहाँ-वहाँ वह इसका विरोध करता है। दलित कविता भी इस साहित्यिक मुहीम की सदस्य है। दलित कवि शिक्षित एवं संघर्षशील है इसलिए वह भद्र समाज के हर व्यवहार को यथार्थ एवं तर्क से देखता है और यदि कहीं पर वह संतुष्ट नहीं होता या उसे किसी षडयंत्र की बू आती है। वहाँ वह तार्किक सवाल करता है और उस व्यवहार की सत्यता को सामने लाता है। दलित कविताओं में विशेष रूप से यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि कवि ने अपनी कविताओं में समाज से, भगवान से, धर्म से, अपने ज्ञातिजनों से वेधक एवं आग्रेय प्रश्न पूछे हैं और उसके सहारे अपनी भावात्मक अभिव्यक्ति को प्रमाणित किया है। इसलिए दलित साहित्य के शिल्प-विधान में इस 'प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति' एक विशेषता के रूप में उभरती है। यह प्रवृत्ति दलित काव्य की भाषाभिव्यंजना को एक नया आयाम देती है। अतः हम यहाँ दलित

कविता की इस विशेषता के कुछ उदाहरणों को प्रस्तुत करना चाहेंगे और उसकी सौंदर्यात्मक उपादेयता का आकलन करने का प्रयास करेंगे।

दलित कविता में प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति विशेषरूप से दिखाई देती है। यहाँ तक की कुछ कवियों ने कविता के शीर्षक ही प्रश्नों के रूप में रखें हैं। जैसे -

तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? - कंवल भारती

कभी सोचा है ? - ओमप्रकाश वाल्मीकि

तब तुम क्या करोगे ? - ओमप्रकाश वाल्मीकि

कौन थे वे ? - अशोक भारती

क्यों है ? - सोहनपाल सुमनाक्षर

तुमने उसे कब पहचाना ? - सुशीला टांकभौरे

आदि-आदि ....! दलित साहित्य ने जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था पर एवं उसके आधार पर निर्मित शोषणमूलक समाज व्यवस्था पर तीखे, वेधक एवं तार्किक सवाल उठाये हैं। इन प्रश्नों ने दलित कविता की भावाभिव्यक्ति को वैज्ञानिक स्वरुप दिया है। तार्किक दृष्टि से उठाए गये सवालों ने समाज के दोहरे मापदण्डों का पर्दाफाश कर दिया है।

यह कटु सत्य है कि दलितों , आदिवासियों एवं अशिक्षितों की आस्थाओं का अभिजात वर्ग ने गैरफायदा उठाया है और जाति, धर्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा की अनेकानेक मनगढ़ंत कहानियाँ बनाकर उन्हें लगातार रौंदा है साथ ही साथ उनका भावनात्मक शोषण किया गया है ! कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इन मनगढ़ंत कहानियों के विषय में तथाकथित 'महाज्ञानी' धर्माचार्यों से तार्किक प्रश्न पूछे हैं कि -

" चूहड़े या डोम की आत्मा / ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है ?

मैं नहीं जानता / शायद आप जानते हो। "

इसी क्रम में वे आगे सवाल उठाते हैं कि -

" पूछेंगे सवाल रुँधे हुए शब्द / क्यों नहीं आयी बाढ़ गंगा में ?

क्यों नहीं उठकर बैठ गया अधजला मुर्दा ?

क्यों नहीं उमड़ा चक्रवात / महासागर की विस्तृत लहरों पर ।

जब पुष्पवर्षा की थी देवताओं ने / तपस्वी की हत्या पर ।" [96]

इस प्रकार प्रश्नों के द्वारा दलित कविता पारंपरिक मान्यताओं का खंडन करती है । वह नुकीले प्रश्नों को उठाकर भद्र समाज को कटघरे में खड़ा कर देती है । कवि कँवल भारती ने सवर्णों एवं तथाकथित धर्माचार्यों को, दलित जीवन की विडंबनाएँ बताकर उनकी निष्ठा को स्पष्ट करने की चुनौती दी है -

"यदि वेदों में लिखा होता / ब्राह्मण ब्रह्मा के पैरों से हुए हैं पैदा

उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं । / तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ?

यदि यह विधान लागू हो जाता / कि तुम्हारे जीवन का कोई मूल्य नहीं ।

कोई भी कर सकता है तुम्हारा वध / ले सकता है, तुमसे बेगार

तुम्हारी स्त्री, बहिन और पुत्री के साथ / कर सकता है बलात्कार ,

जला सकता है घर-बार / तब, तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? " [97]

कहना न होगा कि भद्र समाज के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है और इन प्रश्नों की यही निरुत्तरता इनको अतार्किक एवं अन्यायी सिध्ध करती है । कुछ ऐसे ही प्रश्न ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भी उठाए हैं, और समाज से उसका उत्तर माँगा है - " यदि तुम्हें, / धकेलकर गाँव से बाहर कर दिया जाए /

पानी तक न लेने दिया जाए कुएँ से / दुतकारा- फटकारा जाए चिलचिलाती

दुपहर में / कहा जाए तोड़ने को पत्थर / काम के बदले

दिया जाए खाने को जूठन / तब, तुम क्या करोगे ?

यदि तुम्हें / नदी के तेज बहाव में / उलटा बहना पड़े

दर्द का दरवाजा खोलकर / भूख से जूझना पड़े

भेजना पड़े नयी-नवेली दुल्हन को / पहली रात ठाकुर की हवेली

तब, तुम क्या करोगे ? " [98]

इन पंक्तियों में कविने भद्र लोगों को चुनौती दे दी है कि जो अत्याचार तुमने हमारे साथ किया है, यदि वही आपके साथ हुआ होता तो आप के मन में कैसी

भावस्थिति होती । आप इसको सहकर तो दिखाइए ? दलित कविता की शिल्प-विधि की यह एक अनोखी विशेषता है कि यहाँ वर्ण्य विषय को विविध रीति-प्रवृत्तियों से अभिव्यक्त किया है । इन पंक्तियों के प्रश्न- ने वर्ण्य को और गंभीर एवं गहरा बना दिया है । डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने यह प्रश्न उठाए हैं कि हम और आप मानव ही हैं , हमारा आकार-प्रकार भी एक-सा ही है, फिर आप हमसे नफ़रत क्यों करते हो ? - "हम भी / तुम्हारी तरह ही / इस धरती पर आए हैं / एक ही द्वार से

रक्त, हाड, मांस की काया / भी है हमारी / तुम्हारी तरह / फिर

तुम्हारा / हम से / यह छूआछूत / क्यों हैं ? " [99]

इन प्रश्नों के द्वारा कविने अस्पृश्यता के आधारों को ही निराधार कर दिया है । यहाँ इस प्रश्नरुपी अभिव्यक्ति ने सीधे अपने लक्ष्य पर प्रहार किया है । दलित ऐसी प्रपंची एवं अमानवीय संस्कृति को नकारता है, जो मानव को मानव से अलग करती है, ऐसे धर्म-विधानों के विरुद्ध है जो समतावादी नहीं हैं । वह ऐसी सभी परपराओं एवं मान्यताओं के खिलाफ़ विद्रोह करता है जो मानव को अमानवीय ताड़नाओं को सहने के लिए बाध्य करती हैं। कुछ ऐसी ही भावाभिव्यक्ति अशोक भारती की निम्नलिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है -

"मैं क्यों निष्ठावान बनूँ / तुम्हारे प्रपंच का / यज्ञ का / कर्म कांड का

अतीत के महिमागान का/मैं क्यों निष्ठावान बनूँ/इंसान के अलगाव का

शोषण का / अत्याचार का सदियों के अपमान का !! " [100]

अपने एवं अपनों के साथ हो रहे अन्याय को देखकर दलित कवि विचलित हो उठता है । उसे यह समझ में नहीं आ रहा है, कि यहाँ मानव-मानव को अलग दृष्टि से क्यों देखा जाता है ? क्यूँ एक पूरे वर्ग को अनिवार्य दीनता का शिकार बनाया जाता है और अनेक प्रकार के बंधनों को उन पर थोपा जाता है, जबकि वह भी है , ईश्वर की ही एक निर्मिति । इस द्वन्द्व को दलित कवि कँवल भारती ने बखूबी अपनी पंक्तियों में पिरोया है -

"एक दलित पर, जुल्म क्यों होता है ? / यदि वह साफ़ कपड़े पहनता है ।
यदि वह छत डालता है अपने घर पर, / कैसे होता है एक हिन्दू घायल ?
अछूत यदि भेजता है स्कूल अपने बच्चों को
तो कैसे हो सकता है एक हिन्दू उससे पीड़ित ?
अछूत को बाध्य क्यों किया जाता है / मरे जानवर उठाने, सडा मांस खाने को
घर-घर जाकर रोटी माँगकर लाने को ? हिन्दू आपत्ति क्यों करता है ?
यदि अछूत बदलना चाहता है अपना धर्म ?? " [101]

कवि के द्वन्द्व में दलित जीवन की आह-कराह भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । काव्य के प्रश्न स्वरुप ने उसकी इस वेदना को और तीव्र बनाया है। दलित साहित्य सदियों से संतप्त लोगों में चिनगारी भरना चाहता है, उन्हें अत्याचारों के खिलाफ़ विद्रोह के लिए ललकारता है, इसलिए इस शोषित वर्ग की अकर्मण्यता एवं चूप्पी को वह तोड़ना चाहता है । दलित समाज को वह संगठित एवं संघर्षशील समाज के रूप में देखने का आकांक्षी हैं । सन 1990 में आफ्रिका के डॉ. नेल्सन मंडेला जब 25 साल के लंबे कारावास के बाद मुक्त हुए तब भारत में भी ज़ोर-शोर से खुशियाँ मनायी गयी थीं और डॉ. मंडेला के संघर्ष के उदाहरण दिये जाने लगे थे, तब इसी उत्सवरत भारतीय समाज को कवि श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी "मुक्ति" शीर्षक से रची गई व्यंग्य कविता में नुकीले प्रश्न पूछे थे -

"अब हुआ मुक्त / लिखा आज़ादी का अध्याय
राष्ट्रपति बोल रहा सारा समुदाय / किन्तु हम / क्यों करते हैं गर्व ?
स्वयं पर क्यों नहीं आती शर्म ? क्यों हमें वर्ण-भेद, लिंग-भेद, जाति-भेद ।
खण्ड-खण्ड आफ्रिका दिखता नहीं ?
क्या भारत में समानता है कहीं ??? " [102]

इस प्रकार दलित साहित्य की यह प्रश्न विधा दलित समाज के मानसपट को झकझोर देने में पूर्णतः सफल सिद्ध होती है । दलित समाज पर किए गये अत्याचारों की असंख्य घटनाएँ प्राप्त हैं । दलित महिलाओं के ताड़न की तो कोई सीमा नहीं है,

क्योंकि वह दलितों में भी दलित है। स्त्री के दैहिक शोषण पर भी भेदभाव पाये जातें हैं। आधुनिक समय में भी यदि सवर्ण स्त्री पर कोई अत्याचार होता है तो देश में खलबली मच जाती है, जबकि दलित महिलाओं के साथ तो यह सदियों से होता आ रहा है। सवर्ण समाज ने दलित स्त्रियों का अधिकार पूर्वक उपभोग किया है, जिसके सामने किसी ने आवाज़ नहीं उठायी। महिला-उत्पीड़न की इस भेद-भाव पूर्ण प्रतिक्रिया को लेकर लेखिका रजतरानी 'मीनू' ने देश की बड़ी संस्थाओं और उन पर चिपके प्रतिनिधियों से वेधक सवाल पूछे हैं -

"हमारे साथ जब होता है बलात्कार / सामूहिक बलात्कार
तब क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी / और जब तुम्हारे साथ हुआ बलात्कार
तब क्यों हिल गई संसद भी / चीख उठी महिला सांसद बलात्कार के खिलाफ़
क्यों उड़ गई महिला आयोग के चैन की नींद / आज क्यों उठी बलात्कारियों को / सजा-ए-मौत की मांग / कल क्यों मौन थीं ?? " [103]

यहाँ, दलित स्त्री की वेदना एवं समाज के दोहरे चहेरों के प्रति उसकी खीज एवं अकुलाहट वेधक प्रश्नों के साथ उभरी है। स्वतंत्रता के बाद भी भारत में दलित अत्याचारों में कोई कमी नहीं आई। पहले जो खुले आम अधिकार पूर्वक ताड़न होता था, अब उसीने विविध प्रकार के षडयंत्रों का स्वरुप धारण कर लिया है। अब चतुराई पूर्वक दलित को दलित बनाए रखने में सहायक योजनाओं का निर्माण हो रहा है जैसे अन्त्योदय योजना। सदियों का संताप सहनेवालों को मिल रहे आरक्षण का ज़ोर-ज़ोर से विरोध किया जा रहा है। कारण बताते हैं कि इनसे ज़हीन एवं प्रतिभावान छात्रों को अन्याय हो रहा है, इसलिए आरक्षण का आधार योग्यता ही होना चाहिए। प्रश्न यह उठता है की एकलव्य भी तो ज़हीन एवं प्रतिभावान था, तब किसीने उसके खिलाफ़ हुए षडयंत्र का विरोध क्यों नहीं किया ? क्यों श्रेष्ठ धनुर्धर का पद अर्जुन के लिए ही आरक्षित रखा ? दलित साहित्य इस प्रकार की सुविधा भोगी आरक्षण नीति पर करारा व्यंग्य करता है। दलितों के आरक्षण का विरोध करनेवालों से कवि सोहनपाल सुमनाक्षर ने वेधक सवाल पूछे हैं -

"आरक्षण के विरुद्ध बोलनेवालों / पहले / अपने गिरेवान में निहारो
तुम्हीं जन्मदाता हो आरक्षण के / मंदिरों का पूजारी सिर्फ ब्राह्मण ही होगा
विद्या का शिक्षक सिर्फ ब्राह्मण ही होगा / गुरु शंकराचार्य सिर्फ ब्राह्मण ही होगा / बोलो ब्राह्मणों के लिए / किसने बनाया था यह आरक्षण ?
विद्वान्, गुणी, प्रवीण शूद्र का बेटा / शूद्र ही रहेगा / बोलो, सवर्णों के लिए किसने बनाया था यह आरक्षण ?
क्या वैश्य का बेटा / व्यापार कुशलता को लेकर पेट से जन्मा है ?
क्या शूद्र का बेटा सर्वगुण सम्पन्न होकर किसी और पेट से जन्मा है ?
बोलो / अगर नहीं तो फिर / उस आरक्षण का विरोध क्यों नहीं है ?
और दलितों के उत्थान के लिए मिली /
इस वैशाखी का ही विरोध क्यों है ??? "[104]

निश्चित रूप से इस प्रकार के अनुत्तरित प्रश्नों ने दलित कविता के शिल्प-विधान को एक नए रूप में प्रस्थापित किया है, और कविता की अभिव्यक्ति को प्रहारी बनाया है । प्रश्नों के द्वारा दलित कविता ने धार्मिक आडंबरों एवं धर्मादेशों की प्रामाणिकता को संदेह के दायरे में ला खड़ा किया है । दलित कविता के आग्नेय प्रश्नों की अनुत्तरितता ही दलित दमन के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में प्रस्थापित हुई है । अतः हम कह सकते हैं कि दलित कविता की प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति ने इसकी अभिव्यक्ति को संपूर्ण रूप से सबल बनाया है । कोई साहित्यिक सौंदर्य-प्रेमी चाहे तो इसे प्रश्नालंकार भी कह सकता है ।

6.8 दलित कविता की राष्ट्र चेतना

दलित साहित्य पर अकसर यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें सिर्फ दुःखडों का रोना-धोना है और समाज से विद्रोह एवं आक्रोश है, सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वबोध दलित साहित्य में नहीं मिलता है । वह एक वर्गीय विद्रोह का माध्यम मात्र है ।

इन आरोपों में कोई तथ्य नहीं है, क्योंकि दलित साहित्य में ' मैं ' नहीं 'हम ' की अभिव्यक्ति मिलती है और साथ ही साथ इस साहित्य के राष्ट्रीय सरोकार भी बहुत विस्तृत है । अगर देखा जाए तो दलित साहित्य ही सही मायने में सामाजिक परिमार्जन का औज़ार है, इस दृष्टि से उसका सामाजिक दायित्वबोध स्वत: स्पष्ट हो जाता है । यह साहित्य केवल रोना-धोना या गालियाँ देना नहीं है लेकिन वह राष्ट्रीय समस्याओं एवं चुनौतियों के प्रति भी उतना समर्पित है, क्योंकि आखिर यह भी समाज का एक दर्पण है, अतः समाज के दाग-धब्बों को दिखाकर उसे दूर करने का काम भी करता है । दलित कविता में राष्ट्रीय सरोकारों की विस्तृत अभिव्यक्ति प्राप्त होती है । अतः दलित कविता की शिल्प संबंधी चर्चा में उसकी राष्ट्रीय चेतना का आकलन करना मैं उचित समझूँगा ।

भारत बिनसांप्रदायिक देश है और आज के संदर्भ में यदि कहना चाहें तो उसकी यही बिनसांप्रदायिकता उसकी अधिकांशतः समस्याओं का मूल है । आज देश में धर्म एवं सम्प्रदाय की धूम मची है, उत्पात किए जाते हैं तो धर्म या संप्रदाय के नाम पर, दंगे होते हैं तो धर्म के नाम पर, लोग सताए जाते हैं तो धर्म एवं सम्प्रदाय के नाम पर । आम आदमी का कसूर इतना ही है कि वह अपने धर्म के सार तत्वों को जाने या न जाने कुछ मुट्ठीभर लोगों के हाथ की कठपुतली बन जाता है और धर्म के नाम पर मरने या मारने के लिए तैयार हो जाता है और कुछ गिने-चुने, चलते-पुरजे लोग सामान्य मानवी की इस अवस्था का लाभ उठाते हैं और उनको आपस में लड़वा-भिड़वाकर अपना निजी स्वार्थ सिध्ध करते हैं, समाज में अपना प्रभुत्व बनाए रखते हैं । भारतीय इतिहास में बाबरी मस्जिद, गोधराकांड या अन्य दंगे रूपी कलंक समाज की इसी अवस्था के परिणाम है । कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इन स्थितियों का वर्णन किया है - "गर्म सलाखों से बिंधे / धुआँ-धुआँ जलते शहर में बीचों बीच

खड़ा आदमी संविधान की धाराओं-सा / संदर्भहीन हो गया है / लगता है
अँधेरे और उजाले की / सन्धि-रेखा / वृताकार बनकर /
आदिम गुफ़ा में परिवर्तित हो गयी है ।" 105

इसी भाव बोध की पृष्ठभूमि में कवि मोहनदास नैमिशराय की पंक्तियाँ भी उद्धृत करना चाहूँगा - " हर खेत में हर फसल / हर शहर में एक ही फसल /

वहाँ प्रति बार एक यहाँ अनेक बार / हर गली, नुक्कड़ पर / एक ही सवाल /

मेरे देश में / मेरे शहर में / मेरे गाँव में / दंगे क्यों होते हैं बार-बार ? " [106]

दलित कविता की उपरोक्त पंक्तियाँ यह सिध्ध करती हैं कि दलित साहित्य भी देश की चुनौतियों के प्रति उतना ही सजग है जितना की अभिजात साहित्य ।

जवाहरलाल नहेरु ने अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में भारत को अंतर्विरोधों का देश कहा था, यह वर्तमान में भी सत्य प्रतीत हो रहा है क्योंकि, भारत में आज आतंरिक मतभेद एवं मनभेद इतने अधिक हैं कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि भारत को विदेशियों से ज्यादा स्वदेशियों से खतरा है। सत्ता पक्ष और विपक्ष उन्ही मतभेदों को उछालकर अपना स्वार्थ सिध्ध करने में तुले हुए हैं। सामाजिक विकास या समाज कल्याण अब केवल शब्द मात्र बनकर रह गये हैं । ऐसी परिस्थितियों में पिसती है आम जनता, क्योंकि उसकी सुननेवाले कोई भी नहीं है । सत्ता पक्ष एवं विपक्ष के असली रूप को बाहर लाती दलित कविता की पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं -

"सखी री दोनों जैसे एक । / सत्ता पक्ष, विरोधी भारत, भाँति गीत की टेक ।

नहीं कोई परिवर्तन चाहे, झुग्गी झोंपड़ी देख ।

सखी री दोनों जैसे एक ।" [107]

भारतीय समाज के कुछ इने-गीने लोग करोड़ों लोगों की शक्तियों का दुरुपयोग करते हैं और समाज में भगवान के रूप में स्थापित होने का प्रयास करते हैं। सामान्य जनता को क्षुल्लक लाभों की लालच देकर वे उनसे मनचाहे कार्य करवाते हैं, अपनी सत्ता का दुरुपयोग करते हैं । डॉ. धर्मवीर ने ऐसे लोगों की अच्छी खबर ली है - "चार वोट अधिक बटोर आपे से बाहर हो गए / दस गुंडे इकट्ठे कर

नारे लगवा दिए / बीस गेहूं के दाने बाँट कोठी-कुठलेवाले हो गए

दो अक्षर अधिक पढ़ लुटेरे बन गए । " [108]

प्रस्तुत पंक्तियों में दलित कविता की राष्ट्र चेतना स्पष्ट रूप से झलकती है । दलित कविता शोषण एवं अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाती है, फिर वह अन्याय अपनी जाति के साथ हो या अपने देश के साथ । वह निरंतर इसके विषय में चिंतित नज़र आती है । उसे किसी भी प्रकार का शोषण स्वीकार्य नहीं है । भारतीय समाज धर्माचार्यों के द्वारा, तथाकथित समाज सेवकों के द्वारा और भ्रष्ट नेताओं के द्वारा चूसा जा रहा है और यहाँ का लोकतंत्र एक मज़ाक बनकर रह गया है । यहाँ सत्ता कुछ धनिकों की मुट्ठी में बंद है, तो लोकशाही बीमार नज़र आती है ।

"भारत का लोकतंत्र / शोषण का नकाब ओढ़कर / असंवैधानिक सेज पर /
सुहागरात मना रहा है / नेताजी ने लूट की दुल्हन के हाथ पीले किए /
सेठजी ने / तिजौरी के नोट गीले किए । " 109

यहाँ कविने विविध प्रतीकों एवं रूपकों के द्वारा देश की दुर्दशा का जीवंत चित्र खिंचा है । भारत के स्वातंत्र्योत्तर काल की यह कड़वी वास्तविकता है कि आज़ादी के बाद गरीब और गरीब हुआ है और अमीर और अमीर हुआ है । देश की ऐसी विषम आर्थिक स्थितियाँ असंतोष को जन्म देती हैं और आगे चलकर वही वर्ग संघर्ष का कारण बन जाती हैं । भारतीय समाज के ऐसे आर्थिक असंतुलन को डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ने इस प्रकार पद्यबध्ध किया है -

"झोंपड़ियाँ आज भी / मेरी आँखें नम कर जाती हैं । / चिथड़ा शक्लें /
मुझे गम दे जाती है । /रेंगते कीड़े तलाश रहे हैं / कोई चमत्कार /
कंकाल करता है / नये निर्वाचन को नमस्कार ।" 110

दलित कविता में केवल राष्ट्र चेतना ही नहीं बल्कि विश्व चेतना की झलक भी मिलती है । आज जहाँ विश्व में युध्धों का दौर चल रहा है वहाँ दलित कविता अमन का आगाज़ करती है । वह युध्ध की विनाशकता के साथ-साथ उसकी निरर्थकता को भी जानती है, इसलिए वह विश्वशांति चाहती है । बारूदों के ढेर पर बैठी विश्व संस्कृति से वह शांति एवं नवजीवन की आस लगाये बैठी है –

"क्यों खडी की तुमने / बारूद के ढेर पर हमारी दुनिया /
मुझे जीवन की आस है / हम जंग नहीं चाहते / जीना चाहते हैं /
हम विनाश नहीं सृजन चाहते हैं / हम युध्ध नहीं / बुध्ध चाहते हैं ।" [111]

दलित कविता के उपरोक्त उदाहरण उसकी राष्ट्रचेतना के प्रमाण हैं । दलित कविता भी देश की दुर्दशा के प्रति चिंतित नज़र आती है । अतः यहाँ उसकी राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति उदासीनता का आरोप अपने आप ही गलत सिध्ध होता है ।

6.9 दलित कविता की सामाजिक एवं वैचारिक प्रतिबद्धता

दलित साहित्य को एक वर्ग विशेष का साहित्य करार कर उस पर आज भी अनेक प्रकार की निर्योग्यताएँ थोपी जा रही हैं। दलित कविता की सामाजिकता केवल दलित वर्ग विशेष की ही है उसमें अखिल मानवता के प्रति समाजानुभूति नहीं है । इस प्रकार के आरोप भी दलित साहित्य पर लगाये जाते हैं । लेकिन यदि गहराई से देखा जाए तो दलित साहित्य के केन्द्र में 'मानव' है । हर वह मनुष्य जो शोषीत है, चाहे वह किसी भी वर्ग का हो, दलित साहित्य उसके प्रति संवेदनशील है । इस विषय में श्री ताराचन्द्र खाण्डेकर का कहना है कि-" दलित साहित्य की निष्ठाएँ केवल अछूत आदिवासी, दुःखी-पीड़ित मानव समाज तक ही सीमित नहीं, बल्कि उसमें संपूर्ण मानव समाज के मूल्य हैं ।" [112]

कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकिजी का कहना है कि - "दलित साहित्यकारों ने वेदना, विद्रोह और आक्रोश के साथ-साथ वैचारिक प्रतिबध्धता को भी अपनी भाषा में प्रधानता के साथ अपनाया है । दलित रचनाकार सामाजिक यथार्थ के प्रति सिर्फ संवेदनशील ही नहीं सजग भी है । " [113]

सामाजिकता की परिभाषा क्या हो सकती है । मेरे मतानुसार समाज की समस्याओं, चुनौतियों के प्रति संवेदनशील रहना और उसके उपायों को ढूँढना तथा उन चुनौतियों का सामना करने के लिए जनमानस को तैयार करना और इसमें अपना यथासंभव योगदान देना ही सच्ची सामाजिकता कहलाती है । और अगर इन

तथ्यों को ध्यान में रखकर दलित साहित्य की विवेचना की जाए तो हम पाते हैं कि दलित साहित्य ने अपनी इन सामाजिक जिम्मेदारियों का शत प्रतिशत निर्वहन किया है। अतः इसकी सामाजिकता भी विस्तृत रूप से सिध्ध होती है। उदाहरणार्थ डॉ. श्यामसिंह 'शशि' की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

"मेरे भोले भाई / बनवासी ही रहे तुम / लेकिन यह बात मैं तो समझता हूँ / पर तुम्हारी सन्तति नहीं / वह तो आज भी तुम्हारे पद चिन्हों पर चलती है। जलती है आग में / और संरक्षण का द्रोण फिर / अंगूठा मांगता है
अंगूठा-छाप संस्कृति / दलित पीढ़ी पर / एक और बोझ / छोड़ जाती है धनुर्धर मूर्ख मत बनना फिर / अंगूठा मत देना, मेरे बंधु / अब किसी प्रपंच को सुरक्षित रखना उसे / अगले युद्ध के लिए।" [114]

उपरोक्त पंक्ति में 'मेरे भोले भाई' संबोधन उस वनवासी युवक एकलव्य से अधिक उन तमाम शोषितों एवं वंचितों के लिए हैं जो योग्य होने पर भी अपनी योग्यता के अनुरूप सम्मान नहीं प्राप्त कर पाते हैं। वहीं 'संरक्षण का द्रोण' उन सभी षडयंत्रों का प्रतीक है जो दमन के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। अतः यहाँ केवल आदिवासी युवक एकलव्य की नहीं बल्कि समूचे शोषित वर्ग की बात की गई है और पक्तियों के अंत में अधिकार प्राप्ति की जंग की आहट भी प्रस्तुत हुई है। दलित साहित्य की सामाजिकता के बारे में डॉ. हरिनारायण ठाकुर का मानना है कि "दलित साहित्य भी कुछ ऐसे ही लोगों का सांस्कृतिक विमर्श और समाजिक-ऐतिहासिक पड़ताल है / ऊपरी तौर पर उसकी सामाजिकता दलित समाज तक ही दिखाई पड़ेगी, किन्तु इसकी गहराई में मानव मुक्ति का संग्राम छिपा हुआ है, इसलिए उसके सरोकार भी अखिल मानवता से है। इस दृष्टि से दलित साहित्य की सीमा में संपूर्ण मानव समाज समा जाता है।" [115]

दलित कविता का सामाजिक के साथ-साथ वैचारिक विमर्श भी अपना अलग महत्त्व रखता है। समता एवं न्याय की स्थापना का सपना लिए दलित कविता इस पथ के सभी व्यवधानों से संघर्ष करती नज़र आती है। भारतीय समाज की दरिद्रता

आज टी.वी. पर परिचर्चाओं का विषय बनी हुई है, साहित्य का 'कथावस्तु' मात्र बन गई है । उसे समाज से निष्कासित करने हेतु सनिष्ठ प्रयासों की कमी नज़र आ रही है । निम्नलिखित काव्य पंक्तियाँ इसी विडंबना को सामने लाती हैं -

"भूख और गरीबी पर / लिख सकते हो कविताएँ / शराब के नशे में
किसी बैनर या वाद के बिल्ले तले / सृजन कर सकते हो /
किसी फ़ैशन के तहत / और बहस कर सकते हो / घंटों सर्वहारा जीवन पर समकालीन साहित्य की समीक्षा कर / पद दलित जीवन की प्राण रक्षा के लिए / अनुदान, सहायता, संरक्षण और आरक्षण से / चिढ़ने लगी है तुम्हारी कलम / बकने लगी है गालियाँ और व्यंग्य / तुम्हारी वाणी /
तुम्हारे बहुरुपिए सृजक को पहचानने लगी है अभावग्रस्त पीढ़ी ।" [116]

दलित कविता की सामाजिकता केवल एक वर्ग विशेष के लिए नहीं देखी जा सकती, उसमें मानवमात्र की चिंता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । इस विषय में मोहनदास नैमिशराय का कहना है कि - "दलित कविता एक सामाजिक आन्दोलन का सामाजिक प्रतिफलन है । अन्य काव्यधाराओं और साहित्यिक परंपराओं की अपेक्षा उसका सीधा संबंध जीवन की जमीन से है । " [117]

सारांशतः हम कह सकते है कि दलित कविता अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति सजग है और यही कारण है की उसमें समाजशास्त्रीय विमर्श स्पष्ट रूप से झलकता है ।

❖ समापन

दलित साहित्य के अंतर्गत दलित काव्य भाषा के शिल्प विधान संबंधी इतनी परिचर्चा के बाद इस अध्याय के समग्रावलोकन के द्वारा हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि दलित कविता की भाषा पर लगाये गए सारे आरोप तथ्यविहीन सिध्ध होते हैं । दलित कविता की एक अपनी अलग दुनिया है, उसका लक्ष्य मुक्ति है अतः उसकी भाषा भी विशिष्टताओं से भरी हुई है । दलित कवि अपने आस-पास जो

पीड़ा, अन्याय एवं अत्याचार का वातावरण देखता है, उसीको अपनी रचनाओं में संप्रेषित करता है । ऐसा करते समय वह काव्यसौन्दर्य के मानदण्डों का अनुसरण नहीं करता, उसके लिए आकार से ज्यादा महत्वपूर्ण है आघात । अतः वह इस चोट के लिए जो भी उपयुक्त लगता है उसका प्रयोग करता है चाहे वह अनोखे बिम्ब हो या पौराणिक मिथकों का पुनर्गठन हो, इस दृष्टि से दलित साहित्य की भाषा अधिक सौन्दर्यमयी जान पड़ती है । आक्रोश एवं विद्रोह ही तो दलित साहित्य को जीवंत बनाते हैं, यदि इन्हें दलित साहित्य से निकाल दिया जाए, तो दलित साहित्य अपने महान उद्देश्यों तक कभी नहीं पहुँच पाएगा । इस विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है कि- " मेरा यह आक्रोश मेरा दर्द है । जब मेरी माँ-बहन पर अत्याचार होता है, उसे क्या कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करूँ ? जब में लिखता हूँ तो मेरी रचनाएँ मेरे साथ हुए छल-कपट की अभिव्यक्ति होती है । अपने ऊपर हुए छल-कपट को कलात्मक शैली में पेश करूँ ? जिसका घर जल रहा है, उसका संताप सूर में होना चाहिए ? आक्रोश शास्त्रीय संगीत नहीं है । जो शास्त्रीय संगीत है , वह आक्रोश नहीं है ।" [118]

पाठक को आनंद की अनुभूति करवाना दलित कविता का लक्ष्य नहीं है । इसलिए उसकी भाषा यथार्थ को आम जनभाषा में पेश कर देती है । और यह भी एक प्रकार का काव्यगुण ही है । मानव संस्कृति का कड़वा सच ही दलित कविता के केन्द्र में रहा है, इसलिए इस कड़वाहट को हज़म करना अभिजात साहित्य के लिए मुश्किल बन जाता है -

"खरी-खरी मैं बोलता, लिखता भी हूँ साँच ।
पाखंडी साहित्य को, लग जाएगी आँच ।" [119]

दलित कवि सूरजपाल चौहान की उपरोक्त पंक्तियाँ दलित साहित्य के नकार के मूल तक पहुँचती है । दलित कविता की सार्थकता इसी में छिपी हुई है कि वह कितना प्रहार करती है । दलित कविता का परिवेश एवं उसका लक्ष्य अभिजात साहित्य से अलग है, इसलिए इसका सौंदर्य बोध भी प्रचलित पारंपरिक मापदण्डों से

महसूस नहीं किया जा सकता है । दलित कविता इन मापदण्डों से परे है । दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि के रचनाकर्म के संबंध में डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल के विचार है कि- “ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में आम आदमी की जद्दोजहद् आपाधापियों के साथ बौद्धिक तटस्थता ‘टिपिकल’ काव्य सौंदर्य से ओत-प्रोत हैं । भले ही रीति या परंपरा को मुर्दे की तरह ढोया जाए परंतु इससे पाठकों / सहृदयों में एक विशेष प्रकार की असमंजस दिखाई देती है । कवि समग्र अड़चनों की परवाह किये बिना दलित कविता को वाचाल, प्रौढ़ सशक्त, दबंग एवं विश्वग्राम के मायाजाल से परहेज रखने की पहल कर रहा है ।” [120] और इसी पहल ने आज दलित कविता के अपने नए सौंदर्यशास्त्र का निर्माण किया है । साहित्य एक बहती धारा के रूप में होता है जो समय-काल, परिस्थितियाँ-परिवेश के अनुसार बदलता है और बदलता ही रहना चाहिए । ऐसे नित्य परिवर्तनशील साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के मानदण्ड भी बदलते रहने चाहिए तभी वह उस साहित्य की सौंदर्य चेतना के साथ न्याय कर पाएँगे । तुलसीदास ने अवधि भाषा में लिखा क्योंकि उनका वर्ण्य परिवेश अयोध्या के आस-पास का था, सूरदास ने ब्रजभाषा में लिखा क्योंकि उन्होंने ब्रज-वृंदावन की गलियों में कृष्ण को देखा । अब इसका मतलब यह तो नहीं होता की जो भी लेखक राम के बारे में लिखे उसे अवधि में ही और कृष्ण संबंधी रचनाओं को ब्रज भाषा में ही लिखे। इस प्रकार के किसी भी सौंदर्य तत्वों को किसी भी साहित्य पर थोपा नहीं जाना चाहिए। इसलिए प्रत्येक साहित्य के वर्ण्य विषय, परिवेश एवं लक्ष्य या उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए ही उसकी सौन्दर्यत्मकता की अभिव्यंजना होनी चाहिए । सौंदर्य मूलक तत्वों को भी समय के साथ, परिवेश के साथ बदलना चाहिए, तभी वे किसी भी साहित्य के साथ न्याय कर सकेंगे ।

❖ निष्कर्ष

समग्र अध्याय की विषय सामग्री को ध्यान में रखते हुए हम कतिपय निष्कर्षों तक सहजतया पहुँच सकते हैं ।

1. दलित कविता की भाषा एवं शिल्प-विधान पर लगाये गए सभी आरोप तथ्य विहीन हैं , अतः वह स्वयं ही निरस्त्र हो जाते हैं ।
2. दलित कविता की अभिव्यक्ति को सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि से नहीं, बल्कि उसकी सामाजिक उपादेयता के संदर्भ में आँकना चाहिए ।
3. दलित कविता का शिल्प नवीन भाषा, बोली प्रतीकों, बिम्बों अलंकार एवं मिथकों को अपने में समाए हुए है, अतः वह साहित्यिक दृष्टि से उच्च है ।
4. दलित कवियों ने अपनी दाहक अनुभूतियों को शोषित एवं दलितों के उत्थान हेतु पद्यबध्ध किया है, अतः उद्देश्यपरकता की दृष्टि से यह साहित्य उच्च साहित्य है ।
5. साहित्य को परिवर्तनशील मानते हुए दलित साहित्य के अलग सौंदर्यशास्त्र की मांग उचित एवं अनिवार्य है ।
6. दलित कविता में परंपरित कविता की अपेक्षा एक नये प्रकार की अभिव्यंजना उपलब्ध होती है, जिससे काव्य सौंदर्य का नया विश्व, एक नया गवाक्ष हमारे सामने खुलता है ।
7. दलित कविता की नवीन भाषाभिव्यंजना काव्य साहित्य को एक नया आयाम देती है ।

☆

❖ संदर्भसूची

1. दलित चेतना केन्द्रित हिन्दी-गुजराती उपन्यास ,डॉ. गिरीशकुमार एन. रोहित , गुजरात दलित साहित्य अकादमी, अहमदाबाद, 2004, पृष्ठ- 318

2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, डॉ. शरण कुमार लिंबाले , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ- 45

3. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, डॉ. शरण कुमार लिंबाले , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ-119

4. दलित प्रवाह और साहित्य तटबन्ध-शिखर की और , 1997, डॉ. एन.सिंह (संपादित), पृष्ठ -353

5. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. शरण कुमार लिंबाले , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ -32-33

6. दलित कहानियाँ, संपादक-डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे कमलाकर गंगावणे ,पृष्ठ-18

7. दलित साहित्य का समाजशास्त्र , डॉ. हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ-118

8. सिसकता आत्मसम्मान : डॉ. सी.बी.भारती युद्धरत आदमी, अंक-31. जुलाई-सितम्बर -1995, पृष्ठ-83

9. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. शरण कुमार लिंबाले , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ- 47

10. संकल्पिका , स्मारिका , पटना , पृष्ठ- 28

11. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती : कंवल भारती , पृष्ठ- 53

12. भाषिक शिष्टता के नमूने , डॉ. धर्मवीर भारती , दलित साहित्य (वार्षिकी) 2005 , पृष्ठ- 129

13. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 84

14. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. शरण कुमार लिंबाले , वाणी प्रकाशन नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ- 46

15. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 36

16. दलित साहित्य का समाजशास्त्र , डॉ. हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली , 2010 ,पृष्ठ- 119

17. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 84-85

18. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ- 298-299

19. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 37

20. वही , पृष्ठ- 38-39

21. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 163-164

22. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 196

23. वही , पृष्ठ- 212

24. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 181

25. वही , पृष्ठ- 189

26. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 131

27. वही , पृष्ठ - 207

28. कविता की पड़ताल , डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ- 299

29. वही , पृष्ठ – 245

30. दलित साहित्य का समाजशास्त्र , डॉ. हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ-122

31. रात में डूबा हुआ लोकतंत्र : , मोहनदास नेमिशराय, युध्धरत आदमी ,अंक-31, जुलाई-सितम्बर-1995 ,   पृष्ठ- 46

32. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 59

33. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 93

34. वही ,   पृष्ठ- 132

35. वही , पृष्ठ- 57

36. हिन्दी दलित कविता , डॉ, रजत रानी ' मीनू', नवभारत प्रकाशन , दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 138

37. कर्मशील भारती – दैनिक हिन्दुस्तान , 20 नवम्बर , 1993

38. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-104

39. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 57

40. वही , पृष्ठ -125-126

41. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-113

42. वही , पृष्ठ -175-176

43. युध्धरत आदमी , संपादक : रमणिका गुप्ता अंक 34 / 35 , पृष्ठ -58-59

44. पीड़ा जो चीख उठी ,जयपाल सिंह , पृष्ठ - 46,48

45. कविता की पड़ताल, डॉ.शिवप्रसाद शुक्ल, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, 2011 , पृष्ठ - 247

46. कविता की पड़ताल,डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल,चिन्तन प्रकाशन,कानपुर, 2011 , पृष्ठ- 245

47. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ-261

48. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-51

49. दलित साहित्य का समाजशास्त्र , डॉ. हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ- 119 -120

50. दलित हस्तक्षेप , रमणिका गुप्ता , शिल्पायन , दिल्ली , पृष्ठ- 21

51. क्यों विश्वास करूँ ? , सूरजपाल चौहान , वाणी प्रकाशन , नयी दिल्ली पृष्ठ-33-34

52. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ-259

53. एकलव्य और अन्य कविताएँ , डॉ. श्यामसिंह 'शशि', पृष्ठ-54

54. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ -213-214

55. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 88

56. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ -302-303

57. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ-304

58. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ -305

59. द्रोणाचार्य सुनें , उसकी परंपराएँ सुनें, दयानंद बटोही , युध्धरत आदमी अंक-31 , जुलाई-सितम्बर -1995 , पृष्ठ-93

60. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ -301

61. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-134

62. वही , पृष्ठ-211

63. वही , पृष्ठ - 212

64. अदम गौड्वी – क्रांति धर्मी जून , 1980 , पृष्ठ-36

65. दलित पचासा , मंसाराम विद्रोही , पृष्ठ-41

66. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ-287

67. श्यौराजसिंह बेचैन –नई फ़सल , पृष्ठ- 58

68. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-177-178

69. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 97

70. प्रयास , सूरजपाल चौहान , पृष्ठ-58

71. पीड़ा जो चीख उठी , डॉ. कुसुम वियोगी , पृष्ठ- 30

72. दलित मंजरी , कर्मशील भारती , पृष्ठ -108

73. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ -248

74. बयान बहार , डॉ. सुखवीर सिंह , पृष्ठ - 21

75. बयान बहार , डॉ. सुखवीर सिंह (1985) , पृष्ठ - 25

76. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-139-140

77. सदियों का संताप , ओमप्रकाश वाल्मीकि , पृष्ठ-15

78. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-167

79. कविता की पड़ताल , डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ-299

80. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ- 275-276, 277

81. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-175

82. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-139

83. वही , पृष्ठ-185

84. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-192

85. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-50

86. ओमप्रकाश आज़ाद –स्मारिका संदेश (मुरादाबाद) 14 अप्रैल ,1985, पृष्ठ-58

87. नई फ़सल , श्यौराज सिंह बेचैन , पृष्ठ- 43

88. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 58

89. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , पृष्ठ- 258

90. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 86

91. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ- 260

92. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ- 261

93. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 44-45

94. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 82

95. दलित साहित्य का समाजशास्त्र , डॉ. हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ- 118

96. कविता की पड़ताल , डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ- 296-297

97. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-208, 209, 210

98. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 60-61

99. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली 2008 , पृष्ठ- 295

100. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 187-188

101. हिन्दी मासिक 'हंस' , हम दलित , अप्रैल 1995

102. दैनिक अमर उजाला , श्यौराजसिंह बेचैन , 6 मार्च , 1990

103. कादम्बिनी , अगस्त 2004 , पृष्ठ- 74

104. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ-297-298

105. कविता की पड़ताल , डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ- 297

106. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ- 115

107. दलित पचासा , एम.आर.विद्रोही , पृष्ठ- 23

108. हीरामन , डॉ. धर्मवीर , पृष्ठ- 49

109. निर्णायक भीम, सुलक्षणा ' व्यथित' , अक्तूबर -1982 , पृष्ठ- 14

110. एकलव्य और अन्य कविताएँ , डॉ. श्यामसिंह 'शशि', पृष्ठ- 31

111. दलित निर्वाचित कविताएँ , संपादक : कंवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ-147-148

112. संचेतना ‘ दलित साहित्य विशेषांक’ , संपादक- डॉ. महीपसिंह , पृष्ठ- 79

113. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 84

114. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ- 305-306

115. दलित साहित्य का समाजशास्त्र , डॉ. हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ- 73

116. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा , माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ- 307

117. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ- 58

118. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र , डॉ. शरण कुमार लिंबाले , वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली , 2010 , ओमप्रकाश वाल्मीकि से साक्षात्कार , पृष्ठ- 131

119. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ- 252

120. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ- 301